कौल-कल्पतरु

चण्डी

वर्ष-४६] आषाढ़, २०४७ वि० [संख्या ४

आरती

स्वेच्छा-रूप-धरस्त्वं, नारायण विष्णुः ।
अक्षर ब्रह्म सनातन, विश्वम्भर विष्णुः ।।
ध्यानाय च भक्तस्य तु, विविधाकार-धरो ।
रूपस्य स्थूलाङ्कित, दर्शन दिव्य वरो ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।१

सत्ये शुक्ल स्वरूपं, त्रेता वसु - रूपं ।
द्वापर पीताम्बर - धर, पीत प्रभा सूपं ।।
कृष्णो कृष्ण कलिस्त्वं, त्वं विश्वाधार—
स्त्वं माया-पति त्वं निज-रूप-कलाधारः ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।२

नव धाराधर सुन्दर, श्री राधा - वरदो ।
मुर-हर भक्त-कृपा-कर, रास-शशिः शरदो ।।
नन्दन नन्द-यशोदा, देवकि-वसु-तनयो ।
वृन्दावन वंशी - वट तट यमुना - प्रणयो ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।३

वन्दे रुक्मिणि-रमणो, कोटि मदन-कदनं ।
राधा-भक्ति सु-बर्द्धित, बद्ध मनो - सदनं ।।
शक्ति - मयं सर्वेशं, सर्व - परो रूपं ।
सर्वानन्द - प्रदाता, मूलं जग भूपं ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।४

(शेष आवरण-पृष्ठ ४ पर)

वार्षिक शुल्क ४५) रु० * यह प्रति ४) रु०

श्रीमद्-देवी-भागवत (हिन्दी पद्यानुवाद)

(दो भागों में, मूल्य ३५०-०० रु०। 'चण्डी' सदस्यों के लिए रियायती मूल्य २८०-०० रु०)

'श्रीमद्-देवी-भागवत' १८ पुराणों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। 'महा-शक्ति' की उपासना और 'महा-शक्ति' के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित आख्यानों का जितना विशद वर्णन इसमें मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

'राष्ट्र-गुरु' प० पू० स्वामी जी महाराज 'श्रीमद्-देवी-भागवत' की महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—

"महा-महिमा-शालिनी श्री जगदम्बा की महिमा का गान 'वेद' अपने 'देवी-सूक्त', 'रात्रि-सूक्त' आदि प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रों के द्वारा करते हैं। इन सूक्तों के रहस्यों का ज्ञान तपस्वी महर्षि ही ठीक रूप से हृदयङ्गम कर सकते हैं। इस कठिनता को देखकर भगवान् शङ्कर ने 'आगम-ग्रन्थों' का निर्माण कर सभी जीव मात्र को इसे सुलभ कर दिया।

कलि-मल-ग्रस्त जीवों के उद्धार के लिए, महर्षि-वेद-व्यास ने 'आगम' एवं 'निगम' इन दोनों के रहस्यों को स्पष्ट सुगम-सरल रीति से समझाने के लिए, पौराणिक शैली के द्वारा 'श्रीमद्-देवी भागवत' महा-पुराण की रचना की है।

इस महा-पुराण का आरम्भ गायत्री मन्त्र से होने से इस ग्रन्थ को वेद का व्याख्यान-रूप ही समझना चाहिए। चारों नवरात्रों में नवाह-रूप से इसके श्रवण का माहात्म्य, विशेष रूप से 'स्कन्द-पुराण' के 'मानस-खण्ड' में कहा गया है। यह ग्रन्थ शाक्तों का सर्वस्व है। अनेक अपूर्व रहस्यों से पूर्ण सभी कामनाओं को यह देनेवाला है।

'चण्डी' के पाठकों एवं विद्वानों से यह सानुरोध कथन है कि इस ग्रन्थ के प्रचार की ओर भी प्रयत्न होना चाहिए। इस ग्रन्थ की पौराणिक शैली, साधारण जनता के लिए जितनी उपयोगी है, उतनी और कोई नहीं।......"

'चण्डी' के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जाग्रत 'महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल' के प्रख्यात तन्त्र-साधक स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती के शिष्य और सुपुत्र श्री यमुनाप्रसाद जी ब्रह्मचारी ने अनेक वर्षों की साधना-स्वरूप शाक्तों के इस सर्वस्व 'श्रीमद्-देवी-भागवत' महा-पुराण का हिन्दी-पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है।

आपका यह अनुवाद सरस और सहज है तथा इसके द्वारा 'श्रीमद्-देवी-भागवत' के बहुत से कठिन अंशों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इस हिन्दी-पद्यानुवाद से देवी के उपासकों को संस्कृत का ज्ञान न होते हुए भी विशेष ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

अतः आज ही इस ग्रन्थ को मँगा कर नित्य पाठ, श्रवणादि से कृतार्थ हों।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४६] आषाढ़, २०४७ वि०—जुलाई, १९९० [संख्या ४

१ कृष्णस्तु कालिका-मूर्तिः ('कालिका-अवतार' भगवान् कृष्ण) : पं० रघुवीर मिश्र, एम० ए० १
२ रहस्य-मयी सप्तशती : पण्डित पुखराज शर्मा 'वीर', 'साहित्य-रत्न' ५
३ क्रम से ही साधना सम्भव है : 'दरभङ्गा-राज-वंश-सम्भूत' श्री श्यामानन्दनाथ ७
४ 'पूजा-रहस्य' पर जिज्ञासा : श्री विमलेन्दुशेखर 'शीतांशु' ८

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज की पुण्य स्मृति में
विशिष्ट लेख-माला—'दीक्षा-प्रकाश'

५ संक्षिप्त दीक्षा-विधि : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल २५
६ दीक्षा लेने से पूर्व : पं० रामकिशोर पाठक, 'ज्योतिषी' २६
७ क्रम-दीक्षा (राणा-साहित्य) : 'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादित्ति शास्त्री २९
८ 'क्रम-दीक्षा'-सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान : श्री धन शम्शेर जङ्गबहादुर राणा ४२
९ 'क्रम-दीक्षा' की पूर्व-भूमिका ४८

सूचना

'चण्डी' के चालू ४६ वें वर्ष में पाँच विशेषाङ्क प्रकाशित होंगे। पाँचों विशेषाङ्क हेतु सदस्यता-शुल्क ५५-०० रु० है। कुछ बन्धुओं ने विशेषाङ्कों हेतु अपना सदस्यता-शुल्क पहले से भेज दिया है। जिन बन्धुओं ने सदस्यता-शुल्क नहीं भेजा है, उनकी सेवा में विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा शीघ्र ही जाएँगे। पहला विशेषाङ्क (पञ्च-मकार तथा भाव-त्रय) सभी सदस्यों की सेवा में भेजा जा चुका है। अन्य चार विशेषाङ्क इस प्रकार हैं—

दूसरा विशेषाङ्क	**श्री ललिता-सहस्र-नाम (सविधि एवं सव्याख्या)**	**३० अगस्त, ९० तक प्रकाश्य**
तीसरा विशेषाङ्क	**कोकिलार्णव तन्त्र (आम्नाय-रहस्य-सहित पूर्णाभिषेक-विधि)**	**,,**
चौथा विशेषाङ्क	**शाबर मन्त्र-संग्रह**	**३० अक्टूबर, ९० तक प्रकाश्य**
पाँचवाँ विशेषाङ्क	**हिन्दी शाक्तानन्द तरङ्गिणी**	**३० नवम्बर, ९० तक प्रकाश्य**

'चण्डी' वर्ष ४६ के उक्त विशेषाङ्क सभी सदस्यों की सेवा में शेष **मूल्य ४५-००+५-००= ५०-०० रु०** की वी० पी० द्वारा अथवा **डाक-व्यय ५-०० रु०** की वी० पी० द्वारा **दिसम्बर, ९०** में भेजे जाएँगे। इस बीच **सामान्य अङ्क**, साधारण डाक से **प्रति मास २० वीं तिथि** को भेजे जाएँगे।

'चण्डी' वर्ष ४६ के सामान्य अङ्कों हेतु सदस्यता-शुल्क ४५-०० रु० जिन बन्धुओं ने अभी तक न भेजा हो, वे कृपया अब अवश्य भेज देंगे, जिससे हमें असुविधा न हो।

जन्माष्टमी : २०४७ वि० के अवसर पर—

कृष्णस्तु कालिका-मूर्तिः

'कालिका-अवतार' भगवान् कृष्ण

पं० रघुवीर मिश्र, एम० ए०

'भारत-भूमि' अनादि-काल से सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र रही है। यहाँ आध्यात्मिक तत्त्वों पर अनादि-काल से गवेषणा होती रही है। अध्यात्म का पौधा भारत की उर्वरा भूमि में सदा लहलहाता रहा है। पौधे का लहलहाना उसकी शाखाओं और उप - शाखाओं का फूटना और हरा - भरा रहना है। इसी का परिणाम है कि भारत में अनेक धार्मिक 'वाद' और 'सम्प्रदाय' मिलते हैं।

बहुत से लोग इन सम्प्रदायों को देखकर घबड़ा उठते हैं और भारत के पतन के कारणों में एक इसे भी मानते हैं। कुछ अंश में यह है भी सच, किन्तु यथार्थ में हमारे पतन में सम्प्रदायों की विविधता उतनी सहायिका नहीं है, जितना कि इन सम्प्रदायों को माननेवालों की आचरण-भ्रष्टता और पारस्परिक सहिष्णुता का अभाव। पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय तो हमारी स्वस्थ विचार-शक्ति के परिचायक हैं। 'समन्वय' की भावना और 'सहिष्णुता' के व्यवहार का त्याग अशोभन और अवांछनीय है, जिसका उपदेश कोई भी सम्प्रदाय नहीं देता और जिस मिट्टी में वेदान्त-दर्शन जैसी परिपक्व विचार-धारा हो, वहाँ के निवासियों के लिए साम्प्रदायिक ओछा-पन तो और भी लज्जा की बात है।

सनातन-धर्मावलम्बियों के बीच शैव, शाक्त तथा वैष्णव सम्प्रदाय प्रमुख है। इनमें वैष्णव और शाक्तों के आचरण में परस्पर-विरोधी तत्त्व अधिक पाए जाते हैं—ऐसा जन-साधारण का विश्वास है, किन्तु विचार कर देखा जाय, तो तत्त्वतः अन्तर कम ही है और विचार - धारा में तो बिल्कुल ही कम भेद है। 'उपासना' की प्रक्रिया में केवल 'बलिदान-विधान' के अतिरिक्त और कहीं विभेद है हो नहीं।

वैष्णवों के रहस्यात्मक साधन शाक्तों के रहस्यात्मक साधन से बहुत समता रखते हैं। 'ब्रह्म' की अवतार-सम्बन्धी भावना, जो दोनों सम्प्रदायों का प्राण-स्वरूप है, बिल्कुल एक जैसी है। भगवान् विष्णु की अवतार-भावना, शाक्तों की 'दश-महा-विद्या तत्त्व' की भावना से भिन्न कोई दूसरी कल्पना नहीं है। भगवान् विष्णु के १ मत्स्य, २ कूर्म, ३ वाराह, ४ नृसिंह, ५ वामन, ६ परशुराम, ७ राम, ८ कृष्ण, ९ बुद्ध, और १० कल्कि—ये दश अवतार हैं, तो इधर 'शाक्त-ब्रह्म' के भी १ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्नमस्ता, ७ धूमावती, ८ वगला, ९ मातङ्गी और १० कमला—ये दश रूप हैं। पुराणों में इनकी अनेक कथाएँ हैं और तात्त्विक दृष्टिकोण से सगुण-रूप में 'निष्कल ब्रह्म' की ये अवस्था-विशेष हैं। भगवान् विष्णु के दशावतारों में भगवान् कृष्ण—'पूर्ण ब्रह्म' हैं, तो इधर 'दश-महा-विद्याओं' में काली-'पूर्ण निष्कल ब्रह्म' हैं। अतः तन्त्र-शास्त्र में इन दशावतारों की एकता माँ के इन दश-रूपों के साथ की गई है—

कृष्णस्तु कालिका-मूर्तिः, राम-मूर्तिस्तु तारिणी। नृसिंहश्छिन्नमस्ता स्यात्, वामनो भुवनेश्वरी ॥

इस प्रकार भगवान् विष्णु और भगवान् शिव में जहाँ हमारे शास्त्रों में एक - रूपता बताई गई है, वहीं भगवान् विष्णु और जगदम्बा की एक-रूपता का प्रति-पादन है। यदि भगवान् विष्णु का अवतार लीलाओं से पूर्ण रहने से 'निष्कल ब्रह्म' का विश्व-चर रूप है और स्थूल दिव्य है, तो वहीं ब्रह्म - मयी माँ के ये दश-रूप 'निष्कल ब्रह्म' के सूक्ष्म विश्व-रूप हैं। एक 'वस्तु' (मैटर) है, तो दूसरा 'शक्ति' (इनर्जी)।

तात्त्विक रहस्य तो इसी प्रकार का है। पुराणों में इस तात्त्विक एकता का वर्णन सर्वत्र उपलब्ध है, जिसे पुराण-शैली में कथा का रूप देकर व्यक्त किया है।

भगवान् श्रीकृष्ण और आद्या माँ कालिका के अभेदत्व का प्रतिपादन करनेवाली एक कथा का यहाँ उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा। यह 'महा-भागवत पुराण' में वर्णित है। शाक्तों के बीच इस पुराण की बड़ी प्रतिष्ठा है। यह पुराण 'श्रीमद्-भागवत' का परिशिष्ट है। इसमें दाक्षायिणी का अवतार, नग-नन्दिनी गौरी-चरित, श्रीराम-चरित, श्रीकृष्ण-चरित, गङ्गावतरण तथा काम-रूप पीठ-माहात्म्य का पूर्ण विवरण है। श्रीराम का शक्ति-पूजन विस्तार से यहाँ वर्णित हुआ है। इसी वर्णन के आधार पर महा-कवि निराला ने "राम की शक्ति-पूजा" शीर्षक कविता की रचना की।

प्रस्तुत कथा का वर्णन ४९ वें अध्याय में वर्णित है। श्रीकृष्णावतार के वर्णन-प्रसङ्ग में भगवान् कृष्ण के अवतार लेने के कारणों में परम कारण-रूप शिव और जगदम्बा की प्रेम-लीला का श्रीकृष्ण और राधा के रूप में विस्तार बताया गया है। शिव माँ के दिव्य विग्रह और सौन्दर्य को देखकर इतने विमुग्ध और तन्मय हो उठे कि उन्होंने स्त्री-रूप धारण करने की अभिलाषा की। इसलिए माँ से उन्होंने पुरुष-रूप धारण करने के लिए प्रार्थना की। माता ने कृष्ण-रूप से पृथ्वी पर अवतार लेने का वचन दिया और शिव ने स्त्री-रूप राधा का अवतार लेकर उस परम मनोहर लीला का विस्तार किया। यथा—

काली श्रीकृष्ण - रूपेण, द्वापरान्ते मही-तले। शृणु सावहितो भूत्वा, भक्ति-मानसि नारद ! ॥९
एकदा मन्दिरे रम्ये, कैलासे च सु - निर्जने। पार्वत्या विहरञ्छम्भुः, स्थितः परम-कौतुकी ॥१०
तत्र शम्भुर्निरीक्ष्यैव, पार्वत्या रूपमुत्तमम्। चेतसा चिन्तयामास, नारी-जन्माति-शोभनम् ॥११
ततः प्राह महा-देवीं, देवीं सर्वाङ्ग-सुन्दरीम्। प्रीणयन् प्रिय-वाक्येन, विमृजन् पाणिना मुखम् ॥१२

॥ श्रीशिव उवाच ॥

कृपया परमेशानि !, सर्वे एव मनोरथाः। परिपूर्णाः कृताः किञ्चिदवशिष्टं न विद्यते ॥१३

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

किमन्यद् विद्यते शम्भो !, वाञ्छितं तद्वद प्रभो ! करिष्ये तच्च सम्पूर्णं, भवतः प्रिय-काम्यया ॥१४

॥ श्रीशिव उवाच ॥

यदि मे त्वं प्रसन्नाऽसि, तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि। कुत्रचित् तु पृथ्वी-पृष्ठे, यास्येऽहं स्त्री-स्वरूपताम् ॥१५
यथाऽहं ते प्रियो भर्त्ता, त्वं वै प्राण - समाङ्गना। एतदेव मनोऽभीष्टं, विद्यते प्रार्थ्यमुत्तमम् ॥१६
कुरुष्व परिपूर्णं मे, ममाभीष्ट-फल-प्रदे ! ॥१७

भगवान् शिव की इस विचित्र इच्छा को सुनकर माँ मुस्कुराने लगीं और जगद्-गुरु की इस प्रार्थना में निगूढ़ शिक्षा को समझ इसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने शिव से कहा—

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

भविष्येऽहं त्वत्-प्रियार्थं, निश्चितं धरणी-तले ॥१८
पुं-रूपेण महा-देव !, वसुदेव-गृहे प्रभो ! कृष्णोऽहं मत्-प्रियार्थं स्त्री, भव त्वं हि त्रिलोचन ! ॥१९

॥ श्रीशिव उवाच ॥

पुं-रूपेण जगद्-धात्रि !, प्राप्ता मां कृष्णतां त्वयि। वृषभानोः सुता राधा-स्वरूपाऽहं स्वयं शिवः ॥२०
तव प्राण-समा भूत्वा, विहरिष्ये त्वया सह। मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये, भविष्यन्त्युत योषितः ॥२१
रुक्मिणी सत्यभामाऽऽद्या, महिष्याश्चारु-लोचनाः।

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

तव मूर्तिभिरेताभिर्विहरिष्ये यथोचितम् ॥२२

यथा नापि कृतं कैश्चिन्, न श्रुतं वाऽपि कुत्र-चित् । अपूर्वं तदुपाख्यानं, लोकानां पाप-नाशनम् ॥२३
भविष्यति महा-देव ! महा-पुण्य-करं तथा । विजया च जया चैव, प्रिय-सख्यौ मम प्रभो ! ॥२४
श्रीदाम-वसुदामाख्यौ, पुरुषौ सम्भविष्यतः । विष्णुना समयः पूर्वमासीन्मम महेश्वर ! ॥२५
स मेऽग्रजः प्रियो भ्राता, भविष्यति हलायुधः । मम प्रीति-करो नित्यं, रामाख्यः सु-महा-बलः ॥२६
देव-कार्यं करिष्यामि, सम्भविष्यामि च क्षितौ । संस्थाप्य महतीं कीर्ति, पुनरेष्यामि भू-तलात् ॥२७

॥ श्रीमहा-देव उवाच ॥

एवं प्रति-श्रुतं देव्या, शम्भवे प्रेम-भावतः । तस्मात् बभूव सा कृष्णः, श्यामो नव-घन-द्युतिः ॥२८

इधर पूर्व के तमो-गुणी राक्षस, जो पहले मारे जा चुके थे, इस समय कंसादि पापी क्षत्रिय राजाओं के रूप में अनाचार और अत्याचार ढा रहे थे । माता धरा इनके पाप को धारण करने में असमर्थ हो रही थीं । वे अपना कष्ट निवेदन करने ब्रह्मा के पास पहुँचीं । पृथ्वी की दुर्दशा पर तरस खाकर ब्रह्मा जी समाधिस्थ होकर माँ की स्तुति करने लगे । आकाश-वाणी हुई–

"ब्रह्मन ! घबराने की बात नहीं । समय आ पहुँचा है । मैं स्वयं जागरूक हूँ । मेरे भद्र-काली अंश का शीघ्र ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतार होने जा रहा है । शिव से भद्र-काली ने ऐसी प्रति-श्रुति कर रखी है । आप केवल भगवान विष्णु तथा अन्य देवताओं को सूचित कर दें कि वे सब भी पूर्व-निश्चय के अनुसार हलधर और पाण्डवों के रूप में अवतरित हों ।"

इत्याकर्ण्य वचो ब्रह्मा, धरण्या मुनि-पुङ्गव ! आश्वास्यतां स्वयं प्रागात् कैलासं त्रि-दशैर्वृतः ॥३६
तत्र वीक्ष्य जगद्-धात्रीं, प्रणिपत्य पुनः पुनः । कृताञ्जलि - पुटो ब्रह्मा, वचनं चेदमब्रवीत् ॥३७

॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥

मातस्त्वया हता ये ये, दैत्य-दानव-राक्षसाः । विष्णुनाऽपि च ते सर्वे, साम्प्रतं क्षत्रियर्षभाः ॥३८
तैर्व्याप्ता सकला मही, राजभिर्दुष्ट-चेष्टितैः । न तान् विसहते पृथ्वी, मृत्युस्तेषां विचिन्त्यताम् ॥३९
त्वं मार्तविग्रहं कृत्वा, छलेन धरणी - भुजः । निपातय च तेषां तु, मृत्यु - रूपा त्वमम्बिके ! ॥४०

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

नाहं योत्स्यामि संग्रामे, स्त्री-रूपा क्षत्रियर्षभैः । यतस्ते स्त्री-स्वरेण, मां भक्त्या समुपाश्रिता ॥४१
किन्तु मे भद्र-काली या, मूर्तिर्विद्यतेऽति-द्युतिः । वसुदेव-गृहे ब्रह्मन् !, पुं-रूपेण भविष्यति ॥४२
देवक्यां द्वि-भुजः सौम्यो, वन-माला-विराजितः । श्रीवत्स-लाञ्छन-धरः सु-चारु-मुख-पङ्कजः ॥४३
आत्म-सङ्गोपनार्थाय, विष्णु-लक्षण-लक्षितः । सर्वाङ्ग-सुन्दरः श्यामः, शङ्ख-चक्र-विराजितः ॥४४
भविष्यति महा-माया, दुष्ट-क्षत्रिय-मर्दनम् । पातयिष्यति कंसादीन्, विविधान् क्षत्रियर्षभान् ॥४५
विष्णुश्चापि निजांशेन, पाण्डवो भीम-विक्रमः । अर्जुनेति समाख्यातो, भविष्यति महा-बलः ॥४६

इस प्रकर माँ काली ने कृष्ण-रूप में अवतरित होकर द्वापर में राक्षस-स्वरूप क्षत्रिय राजाओं का नाश कर पृथ्वी के भार को दूर किया था । 'श्रीमद्-भागवत' में भी भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु के दशा-वतारों में कथित नहीं हैं । स्वयं भगवान् ही श्रीकृष्ण थे, ऐसा उल्लेख मिलता है । इधर दश महा-विद्याओं में आद्या ही पूर्ण निष्कल ब्रह्म मानी गई हैं । ध्यान-रहस्य पर भी ध्यान देने से तत्त्वतः 'काली' और 'कृष्ण'-रूप में परमार्थिक भेद नहीं है । अतः 'महा-भागवत' की उक्त कथा अपने में एक बड़ी दार्शनिक सत्यता एवं भारतीय समन्वय-वाद और सहिष्णुता की शिक्षा देती है ।

रहस्य-मयी सप्तशती

कविवर पण्डित पुखराज शर्मा, ब्यावर (राजस्थान)

'महा-भारत' में योगेश्वर श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके महर्षि उपमन्यु ने कहा है—

शक्ति-चरितं वक्ष्ये, प्रसादात्तस्य धीमता। अप्राप्यस्तु ततोऽनुज्ञां, न शक्तुं स्तोतुमीश्वरम् ॥

इसी प्रकार महर्षि व्यास से अनुज्ञा प्राप्त कर मार्कण्डेय - पुराणान्तर्गत मार्कण्ड ऋषि ने **'दुर्गा सप्तशती'** में श्री महा-माया दुर्गा देवी का रहस्य-मय उत्तम चरित-वर्णन किया है। उन्होंने स्व-निर्मित **'मार्कण्डेय-पुराण'** में अपनी अनुपम युक्ति एवं अति विचित्र रचना-शैली का परिचय दिया है। उसमें भी अत्यधिक रचना-कौशल की परा-काष्ठा **"श्रीदुर्गा सप्तशती"** में प्रदीप्त की है, जिसे अवलोकन कर सभी आस्तिक लोगों में उत्साह, धैर्य, विवेक, कार्य-कौशल एवं पूर्ण तत्परता के सद् - भावों की विशेष रूप से जागृति होती है। अतएव उक्त महर्षियों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह न्यून-तम ही है।

'श्रीदुर्गा सप्तशती' का संक्षिप्त रहस्य एवं परिचय यहाँ व्यक्त करता हूँ—

कलौ न चण्डी-सदृशी, सिद्धिदा भुवन-त्रयम्। वाम-दक्षिण-मार्गाभ्यामधिकार-फल-प्रदा ॥

'मेरु-तन्त्र' में स्वयं 'महा-माया' ही 'सप्तशती' के विषय में कहती हैं—

सप्तशत्यास्तु सकलं, तत्त्वं वेद त्वमेव हि। पादौ श्रीहरिर्वेत्ति, तदर्द्धस्तु प्रजापतिः ॥

व्यासस्तुर्यांशकं वेत्ति, कोट्यंशमितरे जनाः ॥

ऐसी दशा में सप्तशती के सम्बन्ध मैं यदि मुझ जैसे क्षुद्र लेखक की लेखनी असमर्थता प्रकट करे, तो क्या आश्चर्य! परन्तु हठात्—**'कहे विना नहिं रहा जु कोई।'** इस पद्य के अनुसार कुछ वर्णन हो रहा है—

१—प्रथम चरित (प्रथमाध्याय) की अधिष्ठातृ-देवी **'महा-काली' 'ईशान आम्नाय'** की नायिका हैं।

२—मध्यम चरित (द्वितीयाध्याय) की अधिष्ठातृ-देवी **'महा-लक्ष्मी' 'आग्नेय आम्नाय'** की नायिका हैं।

३—उत्तम चरित (पञ्चमाध्याय) की अधिष्ठातृ-देवी **'महा-सरस्वती' 'वायव्य आम्नाय'** की नायिका हैं।

ये तीनों सम्मिश्रित होकर सम्पूर्ण सप्तशती **'पश्चिमाम्नायात्मिका'** बन जाती है।

'तृतीयाध्याय' का ध्यान श्रीचक्र-विन्दु - अधिष्ठात्री श्रीत्रिपुर - भैरवी का है, जो सर्वाम्नाय-पूजिता हैं। यह ध्यान विविध देवियों का है, परन्तु एक से सम्बन्ध होने के कारण, 'श्री चक्रस्थ-भैरवी' का ही मान्य है। एक ध्यान एवं एक मन्त्र की कई देवियाँ हैं, परन्तु भैरव पृथक्-पृथक् होने से, तदीय भैरव के गुरु-परम्परा से युक्त होने के कारण वही शक्ति प्रकट होगी, जिसका ध्यान करते हैं।

उदाहरणार्थ—'श्यामा काली' एवं 'काम-कला काली' का ध्यान प्रायः समान ही है, परन्तु एक के भैरव 'महा-काल' एवं अन्य के 'संहार-भैरव' होने से पृथक्-पृथक् प्रकट होंगी।

'श्यामा-काली' एवं 'महा-काली' दक्षिणाम्नायात्मिका हैं, एवं 'काम-कला काली' तथा 'संहार-भैरव' उत्तराम्नायात्मक हैं।

चतुर्थाध्याय का ध्यान **'जय-दुर्गा'** का है। ये श्री-चक्र की एक समया विद्या में समङ्कित हैं।

पञ्चमाध्याय का वर्णन 'उत्तम चरित' में समङ्कित है।

षष्ठमाध्याय का ध्यान **'पद्मावती देवी'** का है। ये 'अधो-ग्राम्नायात्मिका' हैं।

सप्तमाध्याय का ध्यान **'मातङ्गी देवी'** का है, जो तारा देवी के विभेदों में से हैं। ये दक्षिणाम्नाय से पूजिता हैं।

अष्टमाध्याय का ध्यान **'श्रीललिता देवी'** का है, जो 'ऊर्ध्वाम्नाय' की एक प्रधान देवी हैं।

नवमाध्याय का ध्यान **'अर्द्ध-नट-नाटेश्वरी देवी'** का है। ये 'सर्वाम्नायात्मिका' हैं। इसमें प्रकाश-विमर्श-रूप का वर्णन है।

दशमाध्याय का ध्यान **'श्री कामेश्वरी देवी'** का है, जो 'प्रथम-नित्या' के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

एकादशाध्याय में **'श्री भुवनेश्वरी देवी'** का ध्यान है, जो 'पूर्वाम्नायात्मिका' हैं।

द्वादशाध्याय में **'आग्नेय दुर्गा देवी'** का ध्यान है, जो 'सर्वाम्नाय'-पूजिता हैं।

त्रयोदशाध्याय में **'श्री षोडशी देवी'** का ध्यान है, जो 'ऊर्ध्वाम्नाय-नायिका' हैं। ये 'सर्वाम्नायाधिष्ठात्री महा-शक्ति' हैं, जो सर्व-मान्य हैं।

'सप्तशती' से साधक को चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) फल - प्रदायिनी शक्ति प्राप्त होती है। उपासना सविधि होनी चाहिए। श्रद्धा, विश्वास, संयम एवं मनो-निग्रह इस उपासना के प्रधान सोपान हैं।उक्त सभी विद्याएँ, महा-विद्याएँ एकत्र होकर 'सप्तशती' में 'पश्चिमाम्नायात्मिका' बन जाती हैं, क्योंकि 'सप्तशती' स्वयं 'पश्चिमाम्नायात्मिका' है. जिससे ऐहिक एवं भौतिक फल सद्यः प्रदान करती है। 'पश्चिमाम्नाय' की अधिष्ठात्री शक्ति 'कुब्जिका' है। इसके बत्तीस भेद होने से 'सप्तशती' में बत्तीस अङ्गों से अलंकृत बत्तीस भेद हैं।

'सप्तशती' में सर्वाम्नायों से पूजित 'विद्याएँ' 'कुब्जिका' हैं। अतः यह समस्त आम्नायों के अनुयायियों की एक विशेष वस्तु है। इसके पाठ-क्रम में सृष्टि, स्थिति, संहार-क्रम से ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासी के हेतु भी भिन्न-भिन्न विधि-विधान एवं प्रकार हैं, जो अति विचित्र, चमत्कारी एवं विशेष प्रभावशाली हैं।

कवचं ह्यर्गला चैव, कीलकं च तथैव च, त्रि-भूतं च त्रि-रहस्यं च, आपदुद्धारकं तथा ॥
कुब्जिका त्रि-दशाध्याया, दुर्गाङ्गानि इमानि च।

अन्य प्रकार—

दशाङ्गानि च जप्त्वा तु, पश्चात्सप्तशतीं पठेत्। रात्रि - सूक्तं, देवो - सूक्तं, अपराध-क्षममेव च ॥
न्यासो ध्यानावाहने च, नाम - सूक्तानि चाप्यनु। दलं च हृदयं चैव, कवचार्गल - कीलकम् ॥

इस प्रकार सप्तशती के बत्तीस बाह्य-भेद हैं। सङ्केत-रूप में उक्त अध्याय-क्रम के निकट इनका भी सङ्केत है। ये अन्तरङ्ग रहस्यात्मक भेद 'सप्तशती' के अन्तर्गत विद्यमान हैं।

'सप्तशती' एक रहस्य-मय अत्युत्तम ग्रन्थ-रत्न है। इसमें 'गागर में सागर' भरने के हेतु **'स्वल्पाक्षर-बहु अर्थ-बोधकत्वं सूत्रम्'** के रूप में विशेष प्रकार के निर्देश व्यक्त किए गए हैं।

इसका 'प्रथम चरित'–एक अध्याय में ही वर्णित है, 'मध्यम चरित'–एक से त्रि - गुणित वर्णन किया है एवं 'उत्तम चरित'–मध्यम से त्रि-गुणित है।

मार्कण्डेय महर्षि की यह परम श्रेष्ठ कृति अत्यन्त मान्य एवं कार्य-रूप में विशेष प्रकार से सुपरिणत करने योग्य है।

क्रम से ही साधना सम्भव है !

विद्यार्थी--(प्रणाम कर) प्रभु ! मेरी एक प्रार्थना है। मैं ब्राह्मण-कुल का विद्यार्थी हूँ। मुझे जगज्जननी आनन्द-मयी माँ के दर्शन की अभिलाषा है। इसी को लेकर आपको शरण में आया हूँ। कृपा करके अपने श्रीचरणों में आश्रय दें।

गुरु--अभिलाषा तो स्तुत्य है, पर बड़ी ऊँची है। लगन अगर सच्ची है, तो अभिलाषा की पूर्ति अवश्य होगी। बड़ों का कहना है --'जापर जाकर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू ॥' पर तुमको यह कैसे विश्वास हुआ कि मेरे द्वारा तुम्हारा काम होगा ?

विद्यार्थी--महाराज ! मैं तो केवल नाम सुनकर यहाँ आया हूँ। फिर आपके श्री - चरणों का दर्शन जब हुआ, तब स्वतः ऐसा विश्वास हो गया।

गुरु—अच्छा ! यह अन्तरात्मा की पुकार है। फिर भी शास्त्र की मर्यादा रखनी है ही। तुम मेरे इस आश्रम में रहो। समय आने पर 'दीक्षा' और 'शिक्षा' होगी। तुम्हारी योग्यता मुझको देखनी है और मेरी तुमको देखनी है। वैसे हो सकता है कि तुमको पछताना पड़े अथवा मुझी को पछताना पड़े।

विद्यार्थी--जब तक कृपा नहीं होती है, तब तक मुझे क्या करना है ?

गुरु—तब तक तुम नित्य दोनों 'सन्ध्या'-समय यथा-साध्य वेदाचारी होकर वेद-माता 'गायत्री' की उपासना किया करो और अतिरिक्त समय में मेरे कर्मों तथा वाक्यों का मनन करो। उपासक-मण्डली यहाँ जुटती ही है। इनका भी सत्-सङ्ग लाभ-दायक है। ऐसा क्रम तीन महीने तक रहे। पश्चात् अगले तीन महीने तक 'वैष्णवाचारी' होकर 'सन्ध्या-वन्दन' के पश्चात् 'भगवान् विष्णु' की उपासना करो। फिर तीन महीने के बाद 'शैवाचारी' होकर देवाधिदेव 'महा-देव' की उपासना तीन महीने करोगे। इस प्रकार नौ महीने के बाद तुम्हें 'शाक्त-दीक्षा' मिल सकती है। तब भी तुम्हारा 'दक्षिणाचार' ही रहेगा। यह क्रम तब तक रहेगा, जब तक तुममें 'वीर' होने की योग्यता न आ जायगी। देखो, कोई तुरन्त ही बी० ए० या एम० ए० नहीं हो सकता। एम० ए० या बी० ए० होने के लिए 'कोर्स' या 'क्रम' निर्धारित है। इसी प्रकार 'क्रम-दीक्षा' लेकर साधक क्रमशः 'कौल' होकर माँ का दर्शन प्राप्त करता है।

विद्यार्थी—लोग कहते हैं कि दक्षिणाचारी 'पशु' हैं। फिर पशु-भाव से उपासना क्यों अभीष्ट है ?

गुरु--'पशु' शब्द सापेक्षिक है। 'पशु' का अर्थ है, स्थूल ज्ञानी। पूर्ण ज्ञानी मात्र पशु नहीं हैं। अन्यथा सभी पशु ही हैं। शास्त्रों में लिखा है कि 'सदा-शिव' के अतिरिक्त 'इन्द्र' आदि सभी देव - गण पशु हैं। इस प्रकार देव-गण जब पशु होने से निन्द्य नहीं हैं, तो दक्षिणाचारी निन्द्य कैसे हुए ? निन्द्य तो हैं निन्दक ? निन्दक चाहे अपने को वीर कहें या महा-वीर, अगर किसी प्रकार के साधक की निन्दा करते हैं, तो स्वयं निन्द्य हैं। मार्ग सभी ठीक हैं, पर देश-काल-पात्र के अनुसार। इसी हेतु साधन के तीनों भाव--१ पशु-भाव, २ वीर-भाव और ३ दिव्य-भाव—तीन-तीन प्रकार के कहे गए हैं—१ पशु-पशु, २ पशु - वीर और ३ पशु-दिव्य। १ वीर-पशु, २ वीर-वीर, ३ वीर-दिव्य। १ दिव्य-पशु, २ दिव्य-वीर और ३ दिव्य-दिव्य। तन्त्रों में इनके लक्षण बताए गए हैं। इन लक्षणों से पता चलता है कि पशु-पशु-भाव के अतिरिक्त सभी भाव ठीक हैं।

विद्यार्थी—प्रभु ! पशु-पशु-भाव के क्या लक्षण हैं ?

गुरु—पशु - पशु या घोर पशु वही है, जो ईश्वर के अस्तित्व, पुनर्जन्म, स्वर्ग -नरक इत्यादि 'आगम' वाक्य नहीं मानते। श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रों के अनुसार नहीं चलते। स्वेच्छाचार ही जिनका

(शेष पृष्ठ ८ के नीचे)

'पूजा-रहस्य' पर जिज्ञासा

मुंगेर (बिहार) से श्री विमलेन्दुशेखर 'शीतांशु' अपने २.७ ९० के कृपा-पत्र में लिखते हैं :

"....'पूजा-रहस्य' पढ़ा। पृष्ठ ९५ पर 'इष्ट-देवता की पूजा' शीर्षक में परम पूज्य पं. श्री देवीदत्त शुक्ल जी ने गृहस्थों के लिए संक्षिप्त पूजा की पद्धति बताने की कृपा की है, जो क्रमशः निम्न प्रकार है :

१ आज्ञा-प्राप्ति, २ आसन-शोधन, ३ भूमि-पूजन, ४ आसन-पूजन, ५ विघ्नोत्सारण, ६ गुरु, गणपति, इष्ट-देव को प्रणाम, ७ भूत-शुद्धि, ८ प्राणायाम, ९ इष्ट-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा १० गुरु-पूजन, ११ इष्ट-देव-पूजन, १२ माला-पूजन, १३ जप, १४ जप-समर्पण।

मेरी जिज्ञासा यह है कि—

१ आसन पर बैठते ही 'आज्ञा-प्राप्ति' से प्रारम्भ करे या उसके पूर्व आचमन, पवित्रीकरण, चन्दन-धारण, पृथ्वी-पूजन कर ले, तब आज्ञा हेतु प्रार्थना करे?

उत्तर : आचमन, पवित्रीकरण आदि भी पूजा के अङ्ग हैं। अतः सर्व-प्रथम 'आज्ञा-प्राप्ति' का प्रार्थना-मन्त्र पढ़ना उचित है।

२ निर्देश है कि इष्ट-देव की प्राण-प्रतिष्ठा पहले करे, तब गुरु-पूजन करे। ऐसा क्यों?

उत्तर : 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—सिद्धान्त के अनुसार हृदय में इष्ट-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा पहले करनी है। तभी 'देवत्व' की उपलब्धि होगी, जो परब्रह्म-स्वरूप गुरुदेव के पूजन हेतु आवश्यक है।

३ गुरु और इष्ट-पूजन तो बताए गए हैं, किन्तु गणपति-पूजन का निर्देश नहीं है। क्या गणपति-पूजन की आवश्यकता नहीं है?

उत्तर : 'पूजा-रहस्य' के पृष्ठ ९७ पर 'नमस्कार' शीर्षक के अन्तर्गत 'गुरु' और 'इष्ट' के मध्य में गणेश-वन्दना का विधान निर्दिष्ट है। संक्षिप्त पूजन में यह पर्याप्त है।

'पूजा-रहस्य' (पृष्ठ-संख्या १०८, आकार 'चण्डो', मूल्य १५)

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

धर्म है। यथार्थतः ये ही 'पशु' हैं। इनके अतिरिक्त जो 'दक्षिणाचारी' हैं, उनको 'पशु' कहना अनुचित है। 'पश्वाचार' या 'दक्षिणाचार' तो उसी प्रकार 'वीराचार' का आधार या भूमिका है, जिस प्रकार सीधा लिखने के हेतु आदि में रेखा खींचकर लिखना होता है। जब सीधी पंक्ति, अभ्यास से लिखना आ जाती है, तब रेखा खींचने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसी प्रकार जितेन्द्रियता इत्यादि वीरोचित गुण दक्षिणाचार में रहकर आ जायँ, तब दक्षिणाचार के नियमों का पालन गौण हो जाता है। मनोविकारों से बचने के लिए—'दक्षिणाचार' निर्दिष्ट है। इसी हेतु 'दक्षिणाचार' की मूलावश्यकता सिद्ध है। मेरा तो ऐसा वैयक्तिक विचार है कि जो साधक भ्रान्ति-वश 'वीराचारी' हो गए हैं, पर अपने को संयत नहीं रख सकते, वे 'दक्षिणाचारी' होकर साधन करें। इसमें ग्लानि क्या?

विद्यार्थी—प्रभो! मेरा भ्रम दूर हो गया। अब आपके आदेश के अनुसार 'क्रम' से ही साधन आरम्भ करूँगा।

संक्षिप्त 'दीक्षा'-विधि

'दीक्षा'-विधि बहुत सी हैं। इन विधियों की कठिनाइयों को देखते हुए कलि-काल में **'मन्त्रोपदेश'** ही सुलभ है। 'बिश्वसार-तन्त्र' का वचन भी है कि—**'महा-दीक्षा तथा दीक्षा उपदेशस्ततः परम्। युगे-युगे तु कर्तव्या, उपदेशः कलौ युगे।'**

मेरे गुरु-देव की बताई हुई सरल **'मन्त्रोपदेश-विधि'** इस प्रकार है—

"जिस दिन 'दीक्षा' का मुहूर्त हो, उस दिन सर्व-प्रथम वेदज्ञ ब्राह्मणों से स्वस्ति-पाठ करावे। उसके बाद दीक्षार्थी आचमन कर प्राणायाम करे। तदनन्तर आचार्य 'सुमुखश्चैक-दन्तश्च' आदि मन्त्रों से मङ्गल-पाठ करे। तब दीक्षार्थी हाथ में जल लेकर 'सङ्कल्प' करे। 'सङ्कल्प'-वाक्य के अन्त में—'धर्मार्थ-काम-मोक्ष-सिद्धचर्थं अमुक-गोत्रोऽमुक-शर्माहं अमुक-देवता-मन्त्र-प्राप्त्यर्थं अमुक-गोत्रममुक-शर्माणं त्वां गुरुत्वेन वृणे'—यह वाक्य जोड़कर 'सङ्कल्प' के द्वारा 'गुरु' का वरण करे।

इसके बाद गुरु 'सर्वतोभद्र-मण्डल' पर सलिल-पूर्ण 'घट' स्थापित करे। पुष्पादि से उसका यथा-विधि पूजन कर, दो वस्त्रों से उसे लपेट कर उसमें—१ पनस, २ आम्र, ३ अश्वत्थ, ४ वट, ५ वकुल आदि पञ्च-पल्लव और मुक्ता, माणिक्यादि नव-रत्न छोड़कर, नित्यार्चन-क्रम से जिस देवता का मन्त्र देना हो, उसका सविधि पूजन करे। तदनन्तर देवता के मूल-मन्त्र से 'घट' को १०८ बार अभिमन्त्रित करे।

इसके बाद शिष्य को पूजा-स्थान में पूर्व की ओर मुँह करके आसन पर बिठावे और देवता के मूल-मन्त्र द्वारा 'प्रोक्षणी-पात्र' तथा 'कुम्भ' के जल से १०८ बार पल्लवों से उसका अभिषेक करे। फिर गुरु अपने और शिष्य के शिर पर कपड़ा डाल कर, उसके दाहिने कान में देवता के मूल-मन्त्र का तीन बार उपदेश करे। अन्त में यह वाक्य कहे—'अयं मन्त्रः सिद्धिदः भवतु मम त्वावयोः'।

यदि यह सब सम्भव न हो, तो केवल 'शङ्ख-पात्र' की विधि-पूर्वक स्थापना करे। उसे देवता के मूल-मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित कर, उस जल से देवता के मूल-मन्त्र द्वारा शिष्य का मार्जन करे। इसके बाद शिष्य के शिर पर गुरु अपना हाथ रखकर पूर्व-वत् 'मन्त्र' का उपदेश करे।

'वीर'-साधक के मन्त्रोपदेश में विशेष यह है कि उसे पहले पात्र दिया जाता है, तब 'मन्त्र' का उपदेश होता है। '**गुरु**' शिष्य के हाथ में पात्र देकर, यह मन्त्र पढ़ता है—

गुरु— इदं पवित्रममृतं, पीयतां भव-भेषजम्।
पशु-पाश-समुच्छेद-कारणं भैरवोदितम्॥

शिष्य निम्न मन्त्र पढ़ कर अमृत का पान करता है—

शिष्य— धर्माधर्म-हविर्दीप्तमात्माग्नौ मनसा स्रुवा।
सुषुम्ना वर्त्मना नित्यमक्ष-वृत्ति जुहोम्यहम्॥

यदि यह सब भी सम्भव न हो तो, 'चन्द्र' या 'सूर्य'-ग्रहण में अथवा किसी तीर्थ या किसी सिद्ध-क्षेत्र में या शिवालय में **गुरु** से मन्त्र का उपदेश ग्रहण करे।

'दीक्षा' के सम्बन्ध में ज्योतिष-विज्ञान का मत

दीक्षा लेने से पूर्व

यदि आपको 'शाक्त-दीक्षा' ग्रहण करना है, तो अपना 'जन्म-पत्र' देखिए—

१—आपकी 'कार्कांश कुण्डली' में चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि, राहु या केतु पञ्चम या नवमस्थ है न ?

२—'कार्कांश' से नवम में, गुरु के स्थान में चन्द्र और भौम है न ?

३—'कार्कांश लग्न' में चन्द्र-केतु या शुक्र-केतु या 'कार्कांश' से पञ्चमस्थ अथवा 'कार्कांश' से पञ्चम पर गुरु, शुक्र दृष्टि डालते हैं न ?

४—'कार्कांश' से नवम में गुरु के नवांशादि पति शुभ ग्रह से दृष्ट हैं न ?

५—आपकी जन्म-कुण्डली में बुध या राहु पञ्चमस्थ हैं न ?

६—आपके पञ्चमेश और नवमेश का सम्बन्ध तो दृढ़ है न ?

यदि इनमें से एक भी योग आपकी कुण्डली में नहीं है, तो 'शाक्त-दीक्षा' के विचार को छोड़ दीजिए।

यदि आप 'वैष्णव दीक्षा' ग्रहण करना चाहते हैं, तो अपना जन्माङ्क देखिए—

१—आपकी 'कार्कांश कुण्डली' में नवमस्थ या पञ्चमस्थ सूर्य, चन्द्र या बुध स्थित हैं न ?

२—आपकी जन्म-कुण्डली में नवमस्थ बुध है न ?

३—कार्कांश लग्न में बुध, शनि लग्नस्थ हैं न ?

यदि इनमें से कोई योग नहीं है, तो 'वैष्णव-दीक्षा' के विचार को छोड़िए।

यदि आप 'शैव दीक्षा' ग्रहण करना चाहते हैं, तो अपना जन्माङ्क देखिए—

१—आपकी 'कार्कांश कुण्डली' में नवमस्थ या पञ्चमस्थ सूर्य ग्रह या केतु हैं न ?

२—'कार्कांश कुण्डली' में लग्नस्थ सूर्य और केतु हैं न ?

३—कार्कांश में लग्नस्थ गुरु हैं न ?

४—जन्म-कुण्डली में नवमस्थ स्व-क्षेत्री शनि हैं न ?

५—जन्म-कुण्डली में पञ्चम भाव सूर्य से युक्त या दृष्ट है न ?

यदि इनमें से कोई योग आपकी कुण्डली में नहीं है, तो 'शैव-दीक्षा' के विचार को छोड़िए।

सबसे पहले यह देखिए कि आपका 'कार्कांश' शुक्र से दृष्ट तो है, अन्यथा 'दीक्षा'-प्राप्ति में ही आपको कठिनता है।

१—यदि 'कार्कांश कुण्डली' में नवमस्थ या पञ्चमस्थ सूर्य है, तो आप शिवोपासना कर सकते हैं। 'वैष्णव दीक्षा' में 'राम'-मन्त्र आपको सफलता देगा।

२--'कार्कांश' से नवम पञ्चम में यदि चन्द्र है, तो 'गौरो'-भक्त तपस्वीता या 'कृष्ण'-उपासना आपके लिए प्रकृति द्वारा निश्चित है।

३--उसी अवस्था में मङ्गल के होने पर 'स्कन्द' या 'हनुमान' की उपासना ही श्रेयस्कर है।

४--बुध के उन्हीं स्थानों में होने पर आपको तीर्थ-यात्रा, देवालय, भक्ति, नर्तन, पुराण, मन्त्र-यन्त्र, महा-तन्त्र, वेदान्त, वैराग्य आदि से रुचि है। आप 'विष्णूपासना' ही करें।

५--यदि 'कार्कांश' से नवम पञ्चम में गुरु स्थित है, तो मीमांसा तर्क वेदान्त, तप, दान, धर्म, परोपकार, नैष्ठिकत्व में आपका विश्वास है, आप ब्रह्मा या शिव की उपासना करें।

६--शुक्र के उन्हीं स्थानों पर स्थित होने पर भगवती त्रिपुर-सुन्दरी, महा-लक्ष्मी, महा-गौरी आदि की उपासना आपको श्रेयस्कर है।

७--शनि की 'कार्कांश' से नवम पञ्चम में स्थिति होने पर आद्या महा-विद्या, छिन्नमस्ता, धूमावती आदि की उपासना आपको श्रेयस्कर है।

८ राहु के 'कार्कांश' से नवम पञ्चम होने पर सब छोड़कर आप केवल दुर्गा-उपासना करें।

९--केतु की 'कार्कांश' से नवम पञ्चम में स्थिति आपको शिव, गणेश या चण्डी की उपासना से सिद्धि दे सकती है।

१०--'कार्कांश' लग्न में सूर्य केतु पर 'शिव'-भक्ति, चन्द्र होने पर 'गौरी'-भक्ति, शुक्र होने पर 'लक्ष्मी, त्रिपुर-सुन्दरी', मङ्गल होने पर 'स्कन्द', 'हनुमान', बुध और शनि होने पर 'विष्णु', गुरु होने पर 'साम्ब शिव', राहु होने पर 'दुर्गा', केतु होने पर 'गणेश' या 'स्कन्द' की उपासना में आपको शीघ्र तन्मयता प्राप्त हो सकती है।

'अमात्य कार्कांश' होने पर भी इसी प्रकार का विचार कीजिए।

११--कार्कांश त्रिकोण में यदि दो पाप-ग्रह हैं, तो आप अच्छे मान्त्रिक हैं। यदि उन पर पाप-दृष्टि है, तो निग्रहात्मक और शुभ दृष्टि है, तो अनुग्रहात्मक 'मन्त्र-सिद्धि' आपको तत्काल प्राप्त होगी।

१२--जन्म-कुण्डली में सूर्य मित्र-क्षेत्री होकर यदि नवमस्थ आपके हैं, तो आप अनुष्ठान-शील, सात्विक और देवताओं में दृढ़-भक्तिवाले हैं। साथ ही यह देख लीजिए कि आपके प्रथम और दशम वर्ष में तीर्थ-यात्रा का योग हुआ या नहीं। यदि नहीं हुआ, तो आपका सूर्य नवमस्थ मित्र-क्षेत्री नहीं है।

१३--यही सूर्य यदि उच्चस्थ या स्व-ग्रही है, तो ईश्वर में, देवताओं में और गुरु में आपकी दृढ़ भक्ति सम्भव है, किन्तु यदि नीचस्थ या शत्रु-ग्रही होकर यह नवम में है, तो आप धर्म पर जो रुचि जाहिर करते हैं, वह कतई झूठ है।

१४--बुध, गुरु और दशमेश तीनों यदि बलवान् हैं, तो आप यज्ञादि कृत्यों का अनुष्ठान करने-वाले, धर्म-शास्त्रों के श्रवण-मनन में समय बितानेवाले, मन्दिर-तालाब आदि के निर्माता, ब्राह्मण-देवताओं में श्रद्धा रखनेवाले हैं।

१५--जन्म-कुण्डली में पञ्चम भाव को मङ्गल देखता है या मङ्गल पञ्चम भाव में स्थित है, तो आप 'भैरव', 'कार्तिकेय' के भक्त हैं।

१६--शुक्र के नवमस्थ होने पर आप 'गुरु'-भक्त हो सकते हैं।

१७--जन्म-कुण्डली में यदि नवम भाव में नीच का शनि पाप-ग्रहों से युक्त आपके है और पञ्चम या नवम पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं है, तो आपको जो दीक्षा देगा, उसी के मत का आप खण्डन करेंगे। यदि शनि स्व-क्षेत्री है और उन्तीसवें वर्ष में आपने गौ-शाला या घाट का निर्माण किया है, तो आप 'महा-शिव-याग' के कर्त्ता बनेंगे।

१८--जन्म-कुण्डली में यदि राहु अन्य पाप-ग्रहों के साथ में है, तो आपको 'दीक्षा' देकर आपके गुरुदेव को पछतावा ही होगा, क्योंकि आप भक्ति, धर्म-कर्म - विहीन, गुरु-ईश्वर-माता-पिता आदि में विश्वास-श्रद्धा न रखनेवालों में से हैं।

१९--आपके नवम भाग में यदि शुभ-दृष्टि से हीन अकेला केतु है और पञ्चम में भी कोई शुभ-ग्रह नहीं है, तो ज्यादा अच्छा हो कि आप किसी मस्जिद या गिरजा-घर को टटोलें।

२०--'जन्म-कुण्डली' में पञ्चमस्थ बुध सभी देवताओं का भक्त बनाता है।

२१--'जन्म-कुण्डली' में पञ्चमस्थ राहु हो या राहु पञ्चम को देखता हो, तो आप यक्षिणी-प्रेत, शनि आदि पीड़ाकारी देवताओं के उपासक हो सकते हैं। ऐसा 'ज्योतिष-विज्ञान' का मत है।

२२--'जातक-तत्त्व' कहता है कि कार्कांश कुण्डली में लग्नस्थ केतु चन्द्र हैं, तो गौरी; केतु शुक्र हैं तो महा-लक्ष्मी, दश-महा-विद्या। उसी कुण्डली में पञ्चम से गुरु का सम्बन्ध होने पर महा-सरस्वती और शुक्र का सम्बन्ध होने पर महा-काली की उपासना आपको कल्याणकारी होगी।

२३--दशमेश उच्च स्व-ग्रही या मित्र-ग्रही शुभ-ग्रह हो, तो आप आध्यात्मिक अनुभूति पाएँगे।

२४--नवम में मीन राशि में बुध या मङ्गल जन्म-कुण्डली में है, तो आत्म-ज्ञान से आपकी मुक्ति हो सकती है।

२५--यदि आपका दशमेश नवमस्थ है, बलवान है और नवमेश गुरु और शुक्र से दृष्ट है या उनके साथ है, तो आप जप-ध्यान में सफल हो सकते हैं।

[यहाँ जो फलादेश वर्णित हैं, उन्हें शब्दशः स्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि 'ज्योतिष-विज्ञान' केवल सम्भावना की ही सूचना देता है। व्यक्ति अपनी दृढ़ भावना द्वारा कुछ भी कर सकता है। 'सद्-गुरु' और 'इष्ट-देवता' की कृपा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। 'ज्योतिष-विज्ञान' से व्यक्ति को यह आभास मिल सकता है कि उसके जीवन में क्या-कुछ होना सम्भव है और वह उस सबके प्रति सचेत रहकर अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है। अतः आवश्यक है कि ज्योतिष-विज्ञान से इस बात का ज्ञान अवश्य प्राप्त किए रहे कि उसका जीवन किस ग्रह की महा-दशा में बीत रहा है और अन्तर्दशा किस ग्रह की है। इस सम्बन्ध में अपने गुरुदेव से आवश्यक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।—सं०]

क्रम-दीक्षा

[तन्त्र-शास्त्र में 'क्रम दीक्षा' को बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसकी बहुत बड़ी महिमा है। इसमें मन्त्र का षट्-चक्र-शोधन नहीं होता। यह 'दीक्षा' गुरु-देव की अद्वितीय कृपा से उपलब्ध होती है। इसमें दिवस, मास और वर्षों के क्रम से 'दीक्षा' और अभि-षेक होते ही रहते हैं, अतएव इसका नाम 'क्रम-दीक्षा' है। जैसे पढ़नेवाला छात्र प्रति-वर्ष अगली श्रेणी में चढ़ता जाता है और जो बहुत ही योग्य होता है, उसे वर्ष भर में 'डबल प्रमोशन' भी मिल जाता है, उसी प्रकार गुरु-देव शिष्य की योग्यता देखकर कभी एक वर्ष में और कभी वर्ष भर में दो-तीन बार एक दीक्षा से दूसरी दीक्षा के स्तर में पहुँचाते हैं और अन्त में श्रीनाथ-कृपा द्वारा उसका दीक्षा-कार्य सम्पूर्ण हो जाता है। इस 'दीक्षा' का क्रम सामान्य लोगों के लिए नहीं है, इसलिए गुरु-देव और शास्त्रों के द्वारा ही साधक इसका रहस्य जान सकते हैं। यहाँ 'क्रम-दीक्षा' के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।—सं०]

षडाम्नाय के यथार्थ ज्ञान हेतु 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता

गणेश - वटुक - स्तुता रति-सहाय-कामान्विता, स्मरारि-वर-विष्टरा कुसुम-वाण-वाणैर्युता।
अनङ्ग-कुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः, कदम्ब - मध्यगा त्रिपुर - सुन्दरी पातु नः॥

एक महा-विद्या के आश्रय में रह कर भिन्न-भिन्न प्रकार की मुक्ति तो मिलती है, परन्तु स्वयं 'शिव-रूप' बन कर 'निर्वाण-मुक्ति सकल आम्नाय-वेत्ता को ही प्राप्त होती है। अतएव 'क्रम - दीक्षा' नितान्त आवश्यक है। एक आम्नाय से भी अष्ट-सिद्धि, नव - निधि आदि सिद्धियाँ प्राप्त करके साधक सिद्ध बन सकता है, परन्तु यथार्थ शिवत्व की प्राप्ति के लिए 'षडाम्नाय' की आवश्यकता अवश्यमेव है। इस विषय में निम्न प्रमाण है—

यथा स्वल्प - सुखे मग्नो न प्राप्नोति महत् सुखम्। तथा सिद्धौ निमग्नस्य मुक्तिर्दूरे प्रवर्तते॥
तस्मात् सिद्धीस्तृणी-कृत्य भजेच्छ्री - परमेश्वरीम्। अल्पं तपः क्षणान्नश्येत् मध्यमं चापि गर्वतः॥

अर्थात् जो मनुष्य सर्वदा यत्-किञ्चिन्मात्र सुख से सन्तुष्ट रहता है, वह बड़े सुख से वञ्चित रहता है। इसी प्रकार जो साधक संसार को सिद्धि दिखाना ही परम कर्तव्य समझता है, उस साधक से मुक्ति कोसों दूर रहती है। अतएव सिद्धियों को तिनके के समान तुच्छ विचार कर, प्रणत - जन-शङ्करी परमेश्वरी का आराधन करना ही साधक को श्रेयस्कर है।

किस आम्नाय से किस प्रकार की मुक्ति को साधक प्राप्त करता है, इस प्रश्न का उत्तर निम्न-लिखित 'मेरु-तन्त्र' का वचन चारुतया प्रदर्शित करता है—

दक्षिणोपासकः कालः ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात्। देवतायास्तथा पूर्वः सारूप्यं लभते परम्॥
सामीप्यं चोत्तरो लोके पश्चिममवैदिकं फलम्। लाभस्त्यागश्चोपकारो ह्यधोमार्गोऽप्युदर्क-युक्॥

'कुलार्णव' भी 'मेरु-तन्त्र' की पुष्टि करता है और कहता है—

एकाम्नायं च यो वेत्ति स मुक्तो नात्र संशयः । किं पुनश्चतुराम्नाय - वेत्ता साक्षात् शिवो भवेत् ।
चतुराम्नाय-विज्ञानादूर्ध्वाम्नायः परः प्रिये ! तस्मात् तदेव जानीयात् यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।।

अर्थात् एकाम्नाय को सम्यक् प्रकारेण जानने से भी उपासक मुक्ति को प्राप्त हो जाता है और यदि चतुराम्नाय-वेदी हो, तो कहना ही क्या ! वह साक्षात् शिव हो जाता है । चतुराम्नाय से परे ऊर्ध्वाम्नाय है । अतः हे पार्वति ! साधक को ऊर्ध्वाम्नाय के जानने के लिए ही चेष्टा करनी चाहिए ।

षडाम्नाय के यथार्थ ज्ञान के बिना 'षट्-चक्र' की शुद्धि नहीं होती और उसकी शुद्धि के बिना 'शिव-स्वरूप' नहीं हो सकता । इस बात पर 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' भी स्वतन्त्रता से प्रकाश डालता है—

सुन्दरी तारिणी काली क्रम-दीक्षाऽभिगामिनी । क्रम-पूर्णो महेशानि ! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ।।

'वृहद् बड़वानल तन्त्र' इसकी और भी पुष्टि करता है—

सुन्दरी तारिणी काली क्रम-दीक्षाऽभिगामिनी । क्रम-पूर्णो महेशानि ! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ।।
सुन्दरी हादि-विद्या च सादि-विद्या च तारिणी । कादि-विद्या गुह्य-काली मत-त्रय-विभिन्नगा ।।

इसका तात्पर्य यह है कि 'क्रमिक पुरुष' जितना क्रम करता रहता है, उतनी ही 'चक्र - शुद्धि' होती जाती है । क्रम-पूर्ण होने के अनन्तर उसको 'शिवत्व-शक्ति' प्राप्त होती है ।

क्रम-दीक्षा के सन्दर्भ में—'मन्त्र' द्वारा आम्नाय-परक 'चक्र-शुद्धि'

अब 'मन्त्र' द्वारा 'चक्र-शुद्धि' के विषय में प्रकाश डाला जाता है । जब हम लोग बोलते हैं, उस समय से निकले हुए शब्द के साथ वायु के सङ्घर्ष से जिस प्रकार अन्य जनों को कर्ण-द्वारा बोध होता है, उसी प्रकार जब 'मन्त्र'-शब्द का भी मन से मनन होता है, उस समय बाह्य वायु के साथ सङ्घर्ष न होकर आभ्यन्तरिक वायु के साथ सङ्घर्ष होता है । जिस 'मन्त्र' का जो आम्नाय है, वह आम्नाय 'चक्र' में वायु के सङ्घर्ष से यन्त्राकार बन जाता है । जिस 'मन्त्र' का जो देवता है, उसके मन्त्र का ही आवर्ताकार बन जाता है । अतएव मन्त्र, यन्त्र और देवता एक ही माने गए हैं । जैसे यदि स्थिर-चित्त होकर कोई पुरुष एक मिनट मात्र भी प्रणव का चिन्तन करे, तो उसके हृत्-कमल में वायु के सङ्घर्ष से षट् - कोण का आकार बन जाता है । अतएव 'मन्त्र' का मन से ही मनन करना लिखा है । 'सनत्कुमार - संहिता' में कहा है—

वाचिका लक्ष - गुणितं उपांशुः परिकीर्तितः । उपांशोः कोटि-गुणितो मानसस्तु प्रशस्यते ।।

अर्थात् वाचिक से उपांशु जप लाख गुना अच्छा है और मानसिक जप उपांशु जप से कोटि गुना बढ़िया है । वास्तव में जप, मानसिक ही करना अच्छा होता है । तन्त्रान्तर में लिखा है कि जो पाठ को मन में और जप को जोर से (ऊँचे स्वर से) कहता है, वह जप और पाठ दोनों निष्फल होते हैं ।

क्रम के विषय में १ कादि, २ हादि, ३ सादि तीन विद्यायें हैं, जिनका रहस्य निम्न प्रकार है—

सादि विद्या, 'तारा' है और वह 'अधराम्नायात्मिका' है तथा 'मूलाधार-चक्र' की नायिका है । 'मूलाधार-चक्र' अनुत्तर का परामर्शक है ।

कादि विद्या, 'काली' है । शाम्भव मतानुसार 'अनाहत-चक्र' उत्तराम्नायात्मक है, उत्तराम्नाय की नायिका 'गुह्य - काली' है । वह अनाहत - चक्र, उसी अनुत्तर के अनाहत से स्थूल-रूप में परिणत और परामर्शक है ।

हादि विद्या, 'सुन्दरी' है। 'सहस्रार-चक्र' श्री - विद्यात्मक चक्र है। अनुत्तर और अनाहत दोनों का विश्रान्ति-दायक यही 'सहस्रार-चक्र' है।

'इच्छा-शक्ति' हादि-मतगा **'ललिता-त्रिपुर-सुन्दरी'**, 'ज्ञान-शक्ति' महाचीन-क्रम-संयुत संवरौधि-मत-प्रसिद्धा सादि-मतगा (सादि-क्रम समष्टि-रूपिणी) **'महोग्र-तारा'** तथा 'क्रिया-शक्ति' कादि-मतगा काल के कलन करने में तत्पर (काल-संकलनात् काली) **'महा-काली'** होती है। इस प्रकार हादि, सादि, कादि क्रम से तीन प्रकार के रूपवाली भगवती श्री त्रिपुर-सुन्दरी (त्रिपुरा) हैं।

हमारे शरीर में षोडश आधार हैं। प्रत्येक आम्नाय के 'मूल - मन्त्र', षोडश भागों में विभक्त होते हैं। इन षोडश भाग-विभक्त मन्त्रों के प्रत्येक भाग कर, प्रत्येक आधार में विभाव कर मन्त्रार्थ-विचार एवं मन्त्र-चैतन्य के अभ्यास के साथ, मन्त्र का मनन करने से शरीर में एक विशेष प्रकार की झंझनाहट और उस 'चक्र' का नाद भी सुनने में आता है। उसी में वायु का सङ्घर्ष होने से उस आम्नाय का जो चक्र है, उसमें उस मन्त्र के रूप का आवर्त बन जाता है। उसी आवर्त्त से निकले हुए वायु के सङ्घर्ष से, वह वायु 'मृणाल - तन्तु' द्वारा 'ब्रह्म-रन्ध्र' से निकल कर 'ब्रह्म'की ओर चलना प्रारम्भ करता है, जिससे धीरे-धीरे 'ब्रह्म-रन्ध्र' का खुलना आरम्भ हो जाता है और 'ब्रह्म-रन्ध्र' में से एक प्रकार के श्वेत वाष्प का प्रादुर्भाव होता है।

'ब्रह्म-तन्तु' के दर्शन के लिए 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता

जिस प्रकार एक अग्नि-कण में शुष्क तृणादि रख कर फूंकने से, अग्नि का समूह बन जाता है और यदि उस अग्नि-कण को, उपेक्षा-बुद्धि से छोड़ दो, तो वह बुझ जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव का पूर्वोक्त तन्तु द्वारा 'ब्रह्म' के साथ सम्बन्ध है। उस तन्तु को जो सँभाल सकते हैं, वे तन्तु द्वारा 'ब्रह्म' के साथ एकता को प्राप्त कर, 'शिव-रूप' बन सकते हैं। यदि उस तन्तु को उपेक्षा कर छोड़ देते हैं, तो जीव पशु बन कर ८४ लाख योनियों में घूमता रहता है। 'ब्रह्म - रन्ध्र' से निकला हुआ जो श्वेत वाष्प है, उसको 'ब्रह्म-तन्तु' अथवा 'पर-तन्तु' कहते हैं। वह तन्तु अत्यन्त सूक्ष्म-रूप में सब जीवों में विद्यमान है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि अभ्यास की दृढ़ता से वह दृष्टि-गोचर भी हो सकता है। इस तन्तु को जिससे जाना जा सकता है, उसका ही नाम 'तन्त्र' है। 'तन्त्र' को जाननेवाले 'तान्त्रिक' कहलाते हैं।

'क्रम-दीक्षा' की पूर्णता के बिना कोई यथार्थ तान्त्रिक नहीं कहा जा सकता। केवल एक-आध 'तन्त्र-पुस्तक' के अवलोकन से तथा एक-आध 'मन्त्र' के उपदेश से ही कोई तान्त्रिक कहलाने का अधिकारी नहीं होता। यदि साधक 'क्रम-दीक्षा' के नियम से बहुत नहीं, तो थोड़ा भी परिचित हो और भाग्य-वश उसे सद्-गुरु की प्राप्ति हो जाए, तो अल्प - काल में ही वह साधक अपना कार्य-साधन कर सकता है। लिखा भी है—**"सु-गुरोः प्रसादान्निमेष-मात्रेण सु-साध्य एव।"** परन्तु ऐसे सद् - गुरु की प्राप्ति असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्यमेव है। यतः ऐसे महा-पुरुष को जन-समाज अच्छा नहीं लगता। वह सदा एकान्त-सेवी होता है। भाग्योदय से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। बात-की-बात में क्रम का निर्देश कर सकता है और साधक योग्य तान्त्रिक हो, तो तत्-क्षण में गुरूपदिष्ट 'क्रम' ग्रहण कर सकता है और अभ्यास करते-करते तदनुसार शीघ्र अथवा कालान्तर में 'शिवत्व' को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार वृषभ की नासा-रज्जु पकड़कर, बैल को जिधर चाहे मनुष्य उधर ले जा सकता है और वृष बिना किसी हठ के चुपचाप रस्सी पकड़नेवाले के पीछे चलता रहता है, उसी प्रकार सिद्ध

तान्त्रिक महात्मा, जिसको कि पूर्वोक्त 'ब्रह्म-तन्तु' का यथार्थ ज्ञान है, प्रत्येक जीव और देवता में विद्यमान उस 'ब्रह्म-तन्तु' को अपने 'तन्तु-बल' से खींच कर, देवताओं को और सर्व-जीव मात्र को अर्थात् आब्रह्म-स्तम्भ - पर्यन्त स्थावर - जङ्गम रूप को अपने अधीन कर लेता है। लिखा भी है—**'दैवाधीनं जगत् सर्वं, मन्त्राधीनाश्च देवताः।'**

केवल मन्त्र जपने से कुछ नहीं होता। उसके यथार्थ रहस्य को जानने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रत्येक तन्त्र-ग्रन्थ में लिखा है कि, अमुक मन्त्र से अमुक फल की प्राप्ति होती है। साधक इस लालच से विना 'मन्त्र-रहस्य' जाने ही 'मन्त्र' जपना प्रारम्भ कर देता है। जब कोरे जप से कोई सिद्धि हाथ नहीं आती, तब वह 'तन्त्र-शास्त्र' को झूठा प्रमाणित करने लगता है! इसी कारण 'तन्त्र-शास्त्र' लुप्त-प्राय हो रहा है। यदि 'सद् - गुरु - सम्बन्ध' द्वारा 'मन्त्र - रहस्य' जान कर, पूर्ण विश्वास के साथ अभ्यास किया जाय, तो विदित होगा कि बड़े - बड़े पाश्चात्य विद्वानों का जो 'साइन्स' है, उससे यह 'मन्त्र-शास्त्र' बहुत उच्च श्रेणी का है। इस विषय में सर जॉन उडरफ यूरोपियन होते हुए भी पूर्णतया सहमत हैं।

जितने भी लोग 'द्विज' शब्द-वाच्य हैं, वे सब **'सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता, न शैवा न च वैष्णवाः। आदि-शक्तिमुपासन्ते, गायत्रीं वेद-मातरम्।'** इस वचन के अनुसार 'शाक्त' कहे जाते हैं। अतएव अनुभवी सद्-गुरु द्वारा 'क्रम - दीक्षा' प्राप्त करके, 'शिवत्व - प्राप्ति' की साधना में मन लगाकर हम लोग सिद्ध तान्त्रिक बन सकें, तो इस देश का पुनर्जीवन हो सकता है। अतएव इस समय जहाँ-जहाँ 'कौल' और 'शाक्त' विद्यमान हैं, उनको छिप कर बैठने का समय नहीं है। इस विषय में 'महा-निर्वाण तन्त्र' भी लिखता है—

अतएव मया प्रोक्तं दुष्कृते प्रबले कलौ, कुलाचारोऽपि सत्येन कर्तव्यो व्यक्त-भावतः।
गोपनाद्धीयते सत्यं न गुप्तिरनृतं विना, तस्मात् प्रकाशनः कुर्यात् कौलिकः कुल-साधनम्!

'गोप्यं पुनर्गोप्यं जननी-जार - गर्भ-वत्'—इत्यादि वचनान्तरों का आशय यह है कि, 'मन्त्र' और उनका 'रहस्य' प्रकाश - योग्य नहीं है। अर्थात् मन्त्र और उनके रहस्य को श्रीगुरु-मुख द्वारा ही अवगत करना चाहिए। मत - मतान्तर और उनका रहस्य प्रकाशन योग्य है, न कि मन्त्र और उनका रहस्य।

'क्रम-दीक्षा' द्वारा 'शिव-तत्त्व' की प्राप्ति

श्रीविद्या 'पञ्च-दशाक्षरी' का उपासक 'शिव-तत्त्व' को प्राप्त होता है, पुनर्जन्म को नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि 'पञ्च-दशाक्षरी' के कूट-त्रय में १ कादि, २ हादि, ३ सादि—इन तीन विद्याओं की समष्टि होती है। इन विद्याओं की सद्गुरु-सङ्केत द्वारा 'क्रम-पूर्वक उपासना' करने से पुनर्जन्म नहीं होता और उपासक निःसन्देह शिव - तत्त्व को प्राप्त होता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मनुष्य मात्र के आधार पूर्वोक्त तीन चक्र हैं। इन तीनों चक्रों की यथोक्त शुद्धि यदि कोई कर सकता है, तो उसे 'शिव-तत्त्व' की प्राप्ति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसमें भी 'महा-षोडशी' में 'पञ्च-दशी विद्या' के गर्भित होने से बात ही दूसरी हो गई। यथा, कहा भी है—

वक्त्रा-कोटि-सहस्रैस्तु जिह्वा-कोटि-शतैरपि। वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी॥ (परा-तन्त्र)

आम्नायों के मन्त्रों का शरीरस्थ षोडश आधार के सन्दर्भ में विभाजन

अब प्रत्येक आम्नाय के 'मूल-मन्त्र' षोडश भागों में किस प्रकार विभक्त हैं, इसका क्रम निर्दिष्ट किया जाता है—

१ अधराम्नाय में 'आर्य तारा का मूल-मन्त्र' षोडशाक्षरी होने से वह प्रत्येक वीज के एक-एक भाग में बँट जाएगा और उसके षोडश भाग हो जाएँगे।

२ दक्षिणाम्नाय में 'दक्षिण कालिका का मूल-मन्त्र', द्वा-विंशाक्षरी में प्रत्येक वीज के एक-एक भाग और मध्य के 'दक्षिणे कालिके' इस सम्बोधन के एक भाग और अन्त्य के 'स्वाहा' के एक भाग में बँट जाने से षोडश भाग हो जाएँगे।

३ पश्चिमाम्नाय में 'वज्र-कुब्जिका' और 'अघोर-कुब्जिका' दोनों के मूल-मन्त्र, द्वा-त्रिंशाक्षरी होने से दो-दो अक्षरों को एक-एक भाग में बाँट देने से षोडश भाग सम्पन्न हो जाएँगे।

४ उत्तराऽऽम्नाय में 'काम-कला गुह्य-काली' का मूल-मन्त्र, अष्टादशाक्षरी है। बीच के सम्बोधन के 'कालि' दो अक्षर एक भाग में बाँट देने से तथा शेष सब अक्षरों को प्रत्येक अक्षर के प्रत्येक भाग में विभक्त कर देने से षोडश भाग होंगे।

५ पूर्वाम्नाय में 'भुवनेश्वरी' का मूल-मन्त्र, पञ्चाक्षरी होने से पाँचों बीजाक्षरों के स्वर-व्यञ्जन और नाद-विन्दु के विभाग कर देने से षोडश भाग बनाए गए हैं।

६ ऊर्ध्वाम्नाय में 'महा-षोडशी' के मध्य ३ कूटाक्षरी वीजों के प्रत्येक कूट का एक-एक भाग करके ३ भाग और १३ बीजाक्षरों के प्रत्येक बीजाक्षर का एक-एक भाग करके त्रयोदश भागों में विभक्त कर देने से षोडश भाग हो जाएँगे।

लघु साम्राज्य-मेधा में 'गायत्री' का 'सम्यगाप्ता-क्रम' और दीक्षा का प्रत्येक कूट रखकर, प्रत्येक पाद-सहित प्रत्येक कूट का एक-एक भाग करके षोडश भाग बनाए गए हैं।

प्रत्येक आम्नाय के मूल-मन्त्रों के बीजाक्षरों में छहों आम्नायों के विभाग होते हैं और मन्त्रों का अर्थ भी तत्तत्-प्रकार से होता है। यह सब अर्थात् मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य और मन्त्र-सङ्केत यथार्थ में विशद-रूप से गुरु-वक्त्र द्वारा ही समझ में आ सकता है। गुरु-देव व्याख्या-द्वारा सुगम मार्ग से अवगत करा सकते हैं।

क्रम-दीक्षा' के द्वादश भेद

क्रम-दीक्षा मुख्यतः द्वादश प्रकार की है। यथा--१ विद्या-क्रम, २ काद्याम्नाय-क्रम, ३ हाद्याम्नाय-क्रम, ४ हादि पञ्च-क्रम, ५ कादि षोडश-क्रम (इसको श्री विद्या कादि-क्रम भी कहते हैं), ६ हादि नव-क्रम, ७ कादि नव-क्रम, ८ सादि-क्रम, ९ श्रीविद्या चक्र-क्रम (इसको श्रीविद्या सादि-क्रम भी कहते हैं), १० महा-क्रम, ११ पूर्ण-क्रम और १२ लघु-क्रम।

इन क्रमों में विद्या-क्रम छः प्रकार का है—१ पूर्वाम्नाय-विद्या-क्रम, २ दक्षिणाम्नाय विद्या-क्रम, ३ पश्चिमाम्नाय विद्या-क्रम, ४ उपाम्नाय विद्या-क्रम, ५ उत्तराऽऽम्नाय विद्या-क्रम और ६ ऊर्ध्वाम्नाय विद्या-क्रम (इसको ऊर्ध्वाम्नाय हादि-क्रम भी कहते हैं)। 'वृहद् वडवानल तन्त्र' में कहा भी है--

सर्वाम्नाय-प्रभेदेन षड्धा विद्या-क्रमं स्मृतम्। पूर्वाम्नाये चोन्मनी च पूर्णेशी भुवनेश्वरी ॥
द्वीपं शाम्भवकं दिव्यं लिङ्ग-मूले व्यवस्थितम्। आद्या श्यामा दक्षिणा च दक्षिणाम्नाय-वर्त्मनि ॥
संवर्त-शाम्भवं दिव्यं मणिपूरे व्यवस्थितम्। पश्चिमे कुब्जिका वज्र-कुब्जिकाऽघोर-कुब्जिका ॥
सर्वाधिकार-विद्याख्यं शाम्भवं चतुरन्वयम्। उप-मार्गे महा-पूर्वा काली लक्ष्मी सरस्वती ॥

चामुण्डा च महा-विद्येश्वराख्यं शाम्भवं हृदि। उत्तरे सिद्धि-लक्ष्मीश्च महा - सिद्धि करालिका ॥
काम-कला गुह्य-काली हंस-शाम्भव-कण्ठजम्। ऊर्ध्वे बाला पञ्च-दशी षोडशी पर-शाम्भवम् ॥
आज्ञा-चक्रे स्थितं दिव्यं श्रीविद्या-क्रम-संयुतम् ॥

१ विद्या-क्रम

(१) पूर्वाम्नाय-क्रम में **उन्मनी** का त्र्यक्षरी मन्त्र, **पूर्णेश्वरी** का षडक्षरी मन्त्र और **भुवनेश्वरी** का पञ्चाक्षरी मन्त्र लेकर, 'स्वाधिष्ठान-चक्र' में द्वीपेश्वर शाम्भव और द्वीपेश्वर कूट लेकर पूर्वाम्नायी बन कर पूर्वाम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त हो जाता है।

(२) दक्षिणाम्नाय-क्रम में **आद्या काली** का त्र्यक्षरी या षोडशाक्षरी मन्त्र, **श्यामा काली** का त्र्यक्षरी मन्त्र, **दक्षिण काली** का द्वा-विंशाक्षरी मन्त्र लेकर 'मणिपुर - चक्र' में संवर्त कूट और संवर्तेश्वर शाम्भव लेकर दक्षिणाम्नायी होकर दक्षिणाम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त हो जाता है। मतान्तर में पूर्वाम्नाय 'स्वाधिष्ठान-चक्र' में संवर्त, दक्षिणाम्नाय 'मणिपुर चक्र' में द्वीपेश शाम्भव भी माना गया है।

(३) पश्चिमाम्नाय-क्रम में **कुलिलका समया** का द्वा - त्रिंशाक्षरी मन्त्र, **वज्र - कुब्जिका** का **द्वा-त्रिंशाक्षरी** मन्त्र और **अघोर-कुब्जिका** द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र लेकर चतुरन्वय शाम्भव, 'विद्या-चक्र' में **चार** कूट लेकर पश्चिमाम्नायी होकर पश्चिमाम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

(४) उपाम्नाय-क्रम में निम्न-लिखित रहस्य है। बहुत लोगों को केवल छः ही आम्नायों की भ्रान्ति है। अन्य चार आम्नाय भी हैं। तन्त्रों में दश आम्नाय होते हैं। शिव का उत्तर - वक्त्र और पूर्व-वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी गणना 'ईशानाम्नाय' में की गई है। इस आम्नाय की नायिका सप्तशती-वर्णित **दश-वक्त्रा, दश-भुजा** और **दश-पादा महा-काली** है। यथा—

खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः, शङ्खं संदधतीं करैस्त्रि-नयनां सर्वाङ्ग-भूषावृताम्।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवे महा-कालिकां, यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥

पूर्व-वक्त्र और दक्षिण-वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उस विद्या की गणना 'आग्नेयाऽऽम्नाय' में की गई है। इस आम्नाय की नायिका 'सप्तशती' - वर्णित **अष्टादश - भुजी महा-लक्ष्मी** है, यथा—

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां, दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुरा - भाजनम्।
शूलं पाश - सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां, सेवे सैरिभ - मर्दिनीमिह महा - लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम् ॥

दक्षिण और पश्चिम - वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उस विद्या की गणना 'नैर्ऋत्याऽऽम्नाय में की गई है। इसमें **षट्-कर्मादि** अनेक प्रयोगों तथा **यक्षिणी, अप्सरा, चेटकादि साधनों** का वर्णन किया गया है, अतएव इस विद्या की कोई विशेष नायिका नहीं है। इस आम्नाय को सावर-तन्त्र मानते हैं। 'क्रम-दीक्षा' में भी इस नैर्ऋत्याऽऽम्नाय को क्रम से नहीं लेते हैं।

पश्चिम - वक्त्र और उत्तर - वक्त्र मिश्रित होकर जिस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी गणना 'वायव्याम्नाय' में की जाती है। इस आम्नाय की नायिका 'सप्तशती'-वर्णित **अष्ट-भुजा महा-सरस्वती है,** जिसका ध्यान अधो-निर्दिष्ट प्रकार का है—

घण्टां शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः शायकं, हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त - विलसच्छीतांशु - तुल्य-प्रभाम्।
गौरी - देह - समुद्भवां त्रि - नयनामाधार-भूतां, महा-पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम् ॥

उपाम्नाय-क्रम में ईशानाम्नाय **महा-काली** का चतुरक्षरी मन्त्र, आग्नेयाम्नाय **महा - लक्ष्मी** का चतुरक्षरी मन्त्र और वायव्याम्नाय **महा - सरस्वती** का चतुरक्षरी मन्त्र तथा पश्चिमाम्नायांतर्गत **चामुण्डा** का निर्वाण मन्त्र लेकर 'अनाहत - चक्र' में विच्चेश्वर शाम्भव और विच्चेश्वर कूट लेकर 'चामुण्डोपासक' कहलाए जाते हैं। इस क्रम को बङ्गाल के सु-प्रसिद्ध साधक-प्रवर श्री रामकृष्ण परमहंस ने ग्रहण किया था।

(५) उत्तराम्नाय विद्या - क्रम में **सिद्धि - लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **सिद्धि - कराली** का अर्थात् **दशानना गुह्य - काली** की भरतोपासिता षोडशाक्षरी, **काम - कला गुह्य - काली** का अष्टादशाक्षरी मन्त्र लेकर 'विशुद्ध -चक्र' में हंसेश्वर शाम्भव और हंसेश्वर कूट लेकर उत्तराम्नायी बनकर उत्तराम्नाय का सर्वाधिकार प्राप्त किया जाता है, किन्तु षडन्वय शाम्भव पश्चिमाम्नायात्मक और 'अनाहत - चक्र' का विच्चेश्वर शाम्भव उत्तराम्नायातमक में ही माने गए हैं। यह तत्त्व यथार्थ में गुरु - मुख से समीचीनतया अवगत हो सकता है।

(६) ऊर्ध्वाम्नाय में **बाला** का त्र्यक्षरी मन्त्र, **श्रीविद्या** का पञ्च - दशाक्षरी और षोडशाक्षरी लेकर 'आज्ञा - चक्र' में परेश्वर शाम्भव और परेश्वर कूट लेकर ऊर्ध्वाम्नायी बनते हैं। इसमें कोई लोपामुद्रा पञ्च - दशी लेकर लोपामुद्रा षोडशी लेते हैं। कोई षोडशी में महा - षोडशी ही लेते हैं। जो लोग महा-षोडशी लेते हैं, वे लोग पूर्णाभिषेक चतुरन्वय अथवा षडन्वय शाम्भव और ऊर्ध्वाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा' लेते हैं। इन आम्नायों में अपने-अपने गुरु-सम्प्रदाय से कोई तो शाम्भव दीक्षा के पीछे 'सर्वाधिकार-दीक्षा' लेते हैं और कोई 'सर्वाधिकार-दीक्षा' के पीछे 'शाम्भव-दीक्षा' ग्रहण करते हैं।

२ काद्याम्नाय-क्रम

'काद्याम्नाय - क्रम' में कादि - विद्या **'गुह्य - काली'** है। **'गुह्य - काली'** में इन सब विद्याओं की समष्टि न होकर, गुह्य - काली आद्य विद्या **'कुब्जिका'** में समष्टि होती है। ऐसा क्यों होता है? इस विषय में महा - क्रम, कुल - क्रम अर्थात् 'अवरोह - क्रम' है। अतएव अन्य सब विद्याओं का कर - न्यास अंगुष्ठ से प्रारम्भ होता है, परन्तु 'कुब्जिका विद्या' का कर - न्यास कनिष्ठिका से प्रारम्भ होता है।

'परा-तन्त्र' के वचनानुसार 'कुब्जिका' 'कुल-कुण्डलिनी' है, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है।

काद्याम्नाय - क्रमं देवि ! वक्ष्यामि शृणु सुव्रते ! गुह्य-काली च भुवना कुब्जिका वज्र-कुब्जिका।।
अघोर - कुब्जिका पश्चात् शाम्भवं चतुरन्वयम्। सर्वाधिकारं देवेशि ! लघु - पूर्णाभिषेचनम्।।

यह वृहद् 'बड़वानल तन्त्र' का वचन है। इस पर उपासक स्वयं मनन कर सकते हैं।

'काद्याम्नाय - क्रम' में भरतोपासिता **दश - वक्त्रा गुह्य - काली** का षोडशाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—

दश-वक्त्रा षोडशार्णा चतुष्पञ्चाशदशदोर्युता, सर्वासां गुह्य-कालीनां सा वै मुख्यतया स्मृता।।

इस 'महा-काल-संहिता' के वचन से इस आम्नाय-क्रम में **'गुह्य-काली'** की एक ही विद्या ग्रहण की जाती है, इसी से इस विद्या को बहुत से उपासक ग्रहण करते हैं। परन्तु—

यथा काम-कला-काली गुह्य-काली यथा द्विज ! यथा छिन्ना तथा तारा वज्र-कापालिनी यथा।
सिद्धि-लक्ष्मीः तथा देवी विशेषो नास्ति कश्चन, एकैव पूजा विज्ञेया प्रयोगाश्च तथा द्विज !।।

इस 'कालानल तन्त्र' के वचन से **सिद्धि - लक्ष्मी** 'उत्तराम्नाय' की आद्य - विद्या होने से, 'काद्याम्नाय - क्रम' की जो आद्य - विद्या है, उसमें सिद्धि - कराली अर्थात् भरतोपासिता **गुह्य - काली** न लेकर **सिद्धि - लक्ष्मी** लेने की भी किसी - किसी की प्रथा है। इसके अनन्तर द्वितीय विद्या में, 'माया'-वीज ही 'भुवनेश्वरी' का वीज निश्चित होने के कारण **भुवनेश्वरी** का 'एकाक्षरी मन्त्र' ही लेते हैं। तब **कुब्जिका-समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र और **अघोर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र ग्रहण करते हैं। इन तीन विद्याओं को **'त्रि-रत्न-विद्या'** कहते हैं।

मतान्तर में **कुब्जिका-समया, घोर-कुब्जिका, कर्म - कुब्जिका, वीर - कुब्जिका, वज्र - कुब्जिका** तथा **अघोर-कुब्जिका** का भी द्वा - त्रिंशाक्षरी मन्त्र लेते हैं। इन पाँच विद्याओं को **कुब्जिका पञ्च - रत्न - विद्या** कहते हैं। जो लोग **त्रि-रत्न-विद्या** लेते हैं, वे चतुरन्वय शाम्भव, और जो लोग **पञ्च - रत्न - विद्या** लेते हैं, वे षडन्वय शाम्भव लेकर 'सर्वाधिकार-दीक्षा' ग्रहण कर 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं। 'वृहद् बड़वानल तन्त्र' में 'लघु-पूर्णाभिषेचनम्' जो लिखा है, उसका तात्पर्य यह है कि लघु-पूर्णाभिषेचन में, सुधा-पूर्ण घट में सजीव मीन रखने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ पर "महा-पूर्णाभिषेचनम्" इस प्रकार लिखा है, वहाँ पर सजीव मीन रखकर ही पूर्णाभिषेक लिया जाता है, परन्तु कलियुग में सजीव मीन रखकर ही पूर्णाभिषेक देनेवाले गुरुओं के दुष्प्राप्य होने के कारण, उसका प्रतिनिधि 'आर्द्रक' - खण्ड रखकर अभिषेक कर देने की प्रथा है।

'काद्याम्नाय-क्रम'--(१) शिखा-स्वच्छन्द ललित-भैरव-मत तथा (२) नवात्म-भैरव-मत से दो प्रकार का है। इसका भेद उपासक-प्रवर नेपाल-निवासी श्रीमान् मेजर जनरल धन-शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा द्वारा रचित 'परा-महिम्न स्तोत्र' से पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं।

३ हाद्याम्नाय-क्रम

'हाद्याम्नाय-क्रम' में हादि-विद्या **सुन्दरी** है। यह 'ब्रह्म-रन्ध्र-चक्र' की नायिका है। यह क्रम अकुल-क्रम अर्थात् आरोह-क्रम होने से सब विद्याओं की सुन्दरी में ही समष्टि होती है।

हाद्याम्नाय-कर्म वक्ष्ये भोग-मोक्ष-प्रदायकम्। दक्षिणा-कालिका पश्चात् महोग्र - तारिणी ततः ॥
बाला पञ्च-दशी पश्चात् षोडशी तदनन्तरम्। षडन्वयं शाम्भवं च रश्मि - हीनं च शेचनम् ॥

'वृहत् बड़वानल तन्त्र' के इस वचन के अनुसार 'हाद्याम्नाय - क्रम' में **दक्षिण काली** का द्वाविंशाक्षरी मन्त्र लिया जाता है। मतान्तर में इस विद्या के बदले **आद्या - काली** का षोडशाक्षरी मन्त्र लेने की भी प्रथा है। इसके अनन्तर **महोग्र-तारा** का सार्द्ध पञ्चाक्षरी मन्त्र, **बाला** का और पञ्च-दशाक्षरी **श्रीविद्या** लिया जाता है। सार्ध पञ्चाक्षरी-रूपा **महोग्र-तारा** को **महा-नील-सरस्वती** भी कहते हैं। इनके बाद बाला त्र्यक्षरी, श्रीविद्या षोडशाक्षरी, रश्मि-रहित षडन्वय शाम्भव लेकर 'सर्वाधिकार - दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं। षडन्वय शाम्भव की 'रश्मि-विद्या' होती है। यह 'रश्मि-विद्या' महा-क्रम और पूर्ण-क्रम में होती है। अन्य क्रम में नहीं होती। इसकी व्याख्या आगे दी जाएगी।

हादि-क्रम में तीन मत हैं—(१) दक्षिणा-मूर्ति-मत, (२) आनन्द-भैरव-मत और (३) हयग्रीव-मत। हयग्रीव-मत को ही 'लोपामुद्रा-मत' भी कहते हैं।

बाला-त्रिपुरा और **त्रिपुर - भैरवी** एक ही विद्या हैं। मन्त्र में कुछ भेद अवश्य है, रूप और आयुध एक ही हैं। आभूषण में तनिक भेद है कि 'त्रिपुर-भैरवी' की मुण्ड - माला है, 'बाला - त्रिपुरा' की मुण्ड-माला नहीं है। 'त्रिपुरा-सार-समुचय' में भी लिखा है--

भैरवीयमुदिता कुल - पूर्वा, देशिकैर्यदि भवेत् कुल - पूर्वा ।
सैव शीघ्र फलदा भुवि विद्या, पश्यते पशु - जनेष्वपि गोप्या ।।

यह 'बाला-त्रिपुरा' और 'त्रिपुर-भैरवी' पश्चिमाम्नाय में भी पूजिता होती हैं । नेपाल को नेवार जाति में बाला-त्रिपुरा' का 'त्र्यक्षरी मन्त्र', पश्चिमाम्नाय मत से लेने की प्रथा है ।

४—हादि-पञ्च-क्रम

'हादि-पञ्च-क्रम' के विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

हादि-पञ्च-क्रमं वक्ष्ये दक्षिणा-कालिका तथा । तारा छिन्ना च वगला महा-त्रिपुर-सुन्दरी ।।
परेश्वर - शाम्भवं च लघु - पूर्णाभिषेचनम् । इदन्तु भक्तिदं दिव्यं क्रमं सर्वार्थ - साधकम् ।।

अर्थात् 'हादि-पञ्च-क्रम' में **दक्षिणा काली** का द्वा-विंशाक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्द्ध पञ्चाक्षरी तथा **छिन्नमस्ता** के बहुत मन्त्रों में से गुरु-परम्परागत एक मन्त्र लेकर, उसके बाद **वगलामुखी** का मन्त्र लेना चाहिए । वगला-मुखी के भी बहुत मन्त्र हैं । उनमें से गुरु-परम्परागत एक मन्त्र लेकर, **श्रीविद्या** का पञ्च-दशाक्षरी अथवा श्रीविद्या का बाला-षडक्षरी मन्त्र लेकर, परेश्वर शाम्भव और परेश्वर कूट लेकर 'लघु-पूर्णाभिषेक' लिया जाता है ।

५—कादि-षोडश-क्रम

'कादि-षोडश-क्रम' के विषय में तन्त्र-वचन है कि—**कामेश्वरी, भग-मालिनी, नित्य - क्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्नि-वासिनी, महा-विद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुल-सुन्दरी, विमला, नील - पताका,** विजया, **सर्व-मङ्गला, ज्वाला-मालिनी, विचित्रा** और **श्रीविद्या पञ्च-दशाक्षरी** के मन्त्र लेकर 'लघु-पूर्णाभिषेक' लेते हैं । इस क्रम का 'तन्त्र-राज-तन्त्र' में विशद-रूप से वर्णन किया गया है ।

६—हादि-नव-क्रम

'हादि-नव-क्रम' के विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

हादि-नव-क्रमं वक्ष्ये चाद्या श्यामा च दक्षिणा । श्रीमद्-एकजटा पश्चाच्छ्रीमन्नील - सरस्वती ।।
महोग्र-तारिणी पश्चाद् बाला पञ्च-दशी तथा । षोडशी शाम्भवं रश्मि - हीनं षडन्वयं स्मृतम् ।।
सर्वाधिकार तत्रैव लघु - पूर्णाभिषेचनम् । इदं मुक्ति - प्रदं दिव्यं क्रमं शङ्कर - साधितम् ।।

अर्थात् इस क्रम मे **आद्या** का त्र्यक्षरी या दशाक्षरी या षोडशाक्षरी मन्त्र (इनमें विशेष करके 'त्र्यक्षरी मन्त्र' ही लेते हैं) । **श्यामा काली** का त्र्यक्षरी अथवा नवाक्षरी, **दक्षिणा कालिका** का द्वा-विंशाक्षरी, **एक-जटा** का त्र्यक्षरी, **नील-सरस्वती** का सार्द्ध चतुरक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्द्ध - पञ्चाक्षरी, **बाला** का त्र्यक्षरी, **श्रीविद्या** का पञ्च-दशाक्षरी और श्रीविद्या का महा-षोडशाक्षरी मन्त्र लेकर, तव षडन्वय शाम्भव, 'सर्वाधिकार-दीक्षा' और 'लघु-पूर्णाभिषेक' लिया जाता है । इस क्रम को स्वयं शङ्करजी ने ग्रहण किया था ।

७—कादि-नव-क्रम

इसके विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

कादि-नव-क्रमं वक्ष्ये ! प्रत्यक्ष-फल-दायकम् । सिद्धि-लक्ष्मी कराली च श्रीमत्-काम-कलात्मिका ।।
उन्मनी चान्नपूर्णा च तथा श्रीभुवनेश्वरी । कुब्जिका वज्र-कुब्जा च श्रीमहा-घोर-कुब्जिका ।।
रश्मि-हीनं शाम्भवं च पश्चात् सर्वाधिकारकम् । लघु-पूर्णाभिषेकं च क्रमं शक्रादि - साधितम् ।।

अर्थात् इस क्रम में **सिद्धि-लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **सिद्धि-कराली** अर्थात् भरतोपासिता **दशानना गुह्य-काली** का षोडशाक्षरी, **काम-कला गुह्य-काली** का अष्टादशाक्षरी, **उन्मनी** का त्र्यक्षरी, **अन्नपूर्णा** का विंशाक्षरी, **पूर्णेश्वरी** का षडक्षरी, **भुवनेश्वरी** का पञ्चाक्षरी, **कुब्जिका-समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वीर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी तथा **अघोर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी मन्त्र लेकर षडन्वय शाम्भव और सर्वाधिकार-दीक्षा प्राप्त करके लघु-पूर्णाभिषेक लेते हैं।

८——सादि-क्रम

इस क्रम के विषय में 'वृहत् बड़वानल तन्त्र' का वचन है—

सादि - क्रमं सम्वरौधि-मतं दिव्यं शृणु प्रिये ! पन्नगेशी वज्र - पूर्णा योगिनी विजयेश्वरी ॥
एक-जटा च नीला च महा - नील - सरस्वती । उग्र-तारा महोग्रा च महाऽऽर्या-तारिणी तथा ॥
नवात्म - शाम्भवं ज्ञेयं ततः पूर्णाभिषेचनम् । इयं तु मुक्तिदा विद्या चीन - मार्गेण पूजिता ॥

अर्थात् इस क्रम को 'सम्वरौधि क्रम' कहते हैं। 'चीन' और 'महा - चीन - क्रम' साध्य होने के कारण बौद्ध-मत में इस क्रम का विशेष प्रचार है। पाठकों के लिए विशेष उपयोगी नहीं हो सकता। इस क्रम को वशिष्ठ ऋषि जी ने ग्रहण किया था।

९—श्रीविद्या-चक्र-क्रम

'श्रीविद्या-चक्र-क्रम' तीन प्रकार का है—(१) हयग्रीव - क्रम, (२) आनन्द - भैरव - क्रम और (३) दक्षिणा-मूर्त्ति-क्रम। **१ त्रिपुरा, २ त्रिपुरेशी, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ त्रिपुर-वासिनी, ५ त्रिपुरा, ६ श्री-त्रिपुर-मालिनी, ७ त्रिपुरा-सिद्धा, ८ त्रिपुराम्बा, ९ श्रीविद्या पञ्च-दशाक्षरी, १० श्रीविद्या षोडशाक्षरी**—यह 'हयग्रीव-क्रम' है और शुष्क-भाव में ही होता है। आर्द्र-भाव में नहीं होता।

१ त्रिपुरा, २ त्रिपुरेशी, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ त्रिपुर-वासिनी, ५ त्रिपुरा, ६ श्रीत्रिपुर - मालिनी, ७ त्रिपुरा-सिद्धा, ८ त्रिपुराम्बा, ९ त्रिपुर-भैरवी, १० श्रीविद्या पञ्च-दशाक्षरी, ११ श्रीविद्या षोडशाक्षरी—यह 'आनन्द-भैरव-क्रम' है।

१ त्रिपुरा २ त्रिपुरेशिनी, ३ त्रिपुरेशी, ४ त्रिपुर-सुन्दरी, ५ त्रिपुर-वासिनी, ६ त्रिपुरा, ७ श्री-त्रिपुर - मालिनी, ८ त्रिपुरा - सिद्धा, ९ त्रिपुराम्बा, १० त्रिपुर - भैरवी ११ श्रीविद्या पञ्च - दशाक्षरी, १२ लघु - पाशुपत, १३ मध्यम - पाशुपत, १४ महा - पाशुपत, १५ श्रीविद्या षोडशाक्षरी, १६ षडन्वय शाम्भव, १७ पूर्णाभिषेक, १८ सर्वाधिकार दीक्षा, १९ श्रीविद्या सप्तदशी—यह 'दक्षिणा-मूर्ति-क्रम' है।

१०——महा-क्रम

महा - क्रममिमं वक्ष्ये चाद्या श्यामा च दक्षिणा। एक-जटा च नीला च महोग्रा शारदा तथा ॥
श्रीबाला-त्रिपुरा श्रीमद्-बाला-त्रिपुरसुन्दरी । सिद्धि-लक्ष्मीः तथा सिद्धि-कराली काम-कालिका ॥
उन्मनी चान्नपूर्णा च भुवनेशी च कुब्जिका । वीर-कुब्जा तथा वज्र-कुब्जिका परमेश्वरी ॥
पञ्च - दशी षोडशी च श्रीमहा - षोडशाक्षरी । षडन्वय-शाम्भवं च महा - पूर्णाभिषेचनम् ॥
पाशुपत - त्रयं चैव महा - षोढाख्य-न्यासकम् । अथवा भुवनान्ते च कुब्जिका वज्र-कुब्जिका ॥
अघोर - कुब्जिकान्ते च शाम्भवं चतुरन्वयम् । सर्वाधिकारं तत्रैव लघु - पूर्णाभिषेचनम् ॥

'वृहत् बड़वानल तन्त्र' के उपर्युक्त वचन के अनुसार इस क्रम में **आद्या** का त्र्यक्षरी अथवा द्वादशाक्षरी या षोडशाक्षरी, **श्यामा** का त्र्यक्षरी, **दक्षिणा कालिका** का विंशाक्षरी, **एक-जटा** का त्र्यक्षरी,

नील - सरस्वती का सार्ध-चतुरक्षरी, **महोग्र - तारा** का सार्ध - पञ्चाक्षरी, **शारदा** का एकाक्षरी, **बाला** का त्र्यक्षरी और षडक्षरी, **सिद्धि - लक्ष्मी** का नवाक्षरी, भरतोपासिता **सिद्धि - कराली** का षोडशाक्षरी, **काम - कला गुह्य - काली** का अष्टादशाक्षरी, **उन्मनी** का त्र्यक्षरी, **अन्नपूर्णा** का विंशाक्षरी अथवा **पूर्णेशी** का षडक्षरी, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी, त्र्यक्षरी अथवा पञ्चाक्षरी, **कुब्जिका - समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वीर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **श्रीविद्या** का पञ्च-दशाक्षरी और षोडशाक्षरी, **श्रीविद्या महा-षोडशाक्षरी** षडन्वय शाम्भव, महा-पूर्णाभिषेक, लघु-पाशुपत, मध्यम-पाशुपत, महा-पाशुपत, महा-षोढान्यास और 'सर्वाधिकार दीक्षा' लेते हैं।

यह क्रम दो प्रकार का है। प्रथम प्रकार में **श्रीमहा-षोडशी** में सर्व-विद्याओं की समष्टि करके, ऊर्ध्वाम्नायी होकर 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं। द्वितीय प्रकार में **अघोर-कुब्जिका** में सब विद्याओं की समष्टि करके पश्चिमाम्नायी होकर पश्चिमाम्नाय का 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं।

पहले प्रकार में भुवनेश्वरी का मन्त्र लेकर, कुब्जिका - समया का द्वा - त्रिंशाक्षरी अथवा कर्म - कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी, घोर-कुब्जिका का द्वा-त्रिंशाक्षरी, वीर - कुब्जिका का द्वा - त्रिंशाक्षरी (यहाँ 'वृहद् बड़वानल' तन्त्रोक्त कुब्जिका-पद से तीनों ही कुब्जिकाओं का ग्रहण होता है)। वज्र - कुब्जिका, अघोर-कुब्जिका और चतुरन्वय शाम्भव, इस प्रकार लिखा है। तथापि षडन्वय शाम्भव लेने की ही प्रथा है। सर्वाधिकार-दीक्षा, 'पूर्णाभिषेक' और कुब्जिका का 'षोढा-न्यास' भी लेते हैं।

११—पूर्ण-क्रम

इस क्रम के विषय में 'वृदद् बड़वानल तन्त्र' में निम्न-लिखित प्रकार से लिखा है—

पूर्ण - क्रममहं वक्ष्ये पर-ब्रह्म - स्वरूपकम्। आद्या श्यामा दक्षिणा च श्रीमदेक - जटा तथा ।।
नीला सरस्वती चैव महोग्रा - तारिणी तथा। शारदा त्रिपुरा बाला - त्रिपुर - सुन्दरी ।।
सिद्धि-लक्ष्मीः सिद्धि-पूर्वा करालो सिद्धि-कालिका। सिद्धि-कापालिनी श्रीमद्-गुह्या काम-कलात्मिका ।।
उन्मनी च अन्नपूर्णा च भुवना भुवनेश्वरी। श्रीमद्-भुवन-पूर्वा च सुन्दरी सर्व-सिद्धिदा ।।
महा-काली महा-लक्ष्मी महा-पूर्वा सरस्वती। चामुण्डा कुब्जिका घोर-कुब्जिका वीर-कुब्जिका ।।
वज्र-पूर्वा कुब्जिका च कुब्जिका घोर - पूर्विका। पञ्च-दशी षोडशी च गायत्री ब्रह्म-रूपिणी।
श्रीमहा - षोडशी पूर्ण - शाम्भवं च षडन्वयम्। सर्वाधिकार-रूपं च गायत्री च चतुष्पदा।
पाशुपत - त्रयं चैव महा - पूर्णाभिषेचनम्। महा-षोढा-द्वयं न्यासं ततः सप्त - दशाक्षरी ।।
साम्राज्य-दीक्षा मेधा च केवला मुक्ति-दायिनी। वानप्रस्थाश्रमे पश्चात् महा-मेधाऽभिधीयते ।।
महा - साम्राज्य - दीक्षाया लोके पर-तरं नहि। न न्यास - पूजनं तत्र नियमं नापि विद्यते ।।
केवलं धारणान्मुक्तिर्मन्त्रोच्चाराच्छिवो भवेत्। एवं सङ्केत - मात्रं तु कथितं ते मयाऽधुना।
गुरु - वक्त्राम्बुजादेव तत्सर्वं ज्ञायते बुधैः। तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन गोपनीयं त्वया शिवे ! ।।

इस क्रम में आद्या का त्र्यक्षरी या दशाक्षरी अथवा षोडशाक्षरी, **श्यामा** का त्र्यक्षरी या नवाक्षरी, **दक्षिणा-कालिका** का द्वा-विंशाक्षरी, **एक-जटा** का त्र्यक्षरी, **नील - सरस्वती** का सार्ध - चतुरक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्ध-पञ्चाक्षरी, **शारदा** का एकाक्षरी, **बाला** का त्र्यक्षरी और षडक्षरी (ये सब 'हादि - विद्या' के भाग हैं), **सिद्धि-लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **सिद्धि-कराली** अर्थात् रामोपासिता दश-वक्त्रा गुह्य-काली का सप्त-दशाक्षरी, **सिद्धि-कपालिनी** अर्थात् हिरण्यकशिपूपासिता शत-वक्त्रा गुह्य-काली का षोडशाक्षरी। इस विद्या के विषय में यद्यपि महा-काल-संहिता में इस प्रकार से लिखा है—

इयं हिरण्यकशिपूपासिता षोडशाक्षरी । पूर्वमत्युदधृता चैव साम्प्रतं च समुद्धृता ।।
महा-प्रलय-कर्तृत्वान्नोपास्येयं नृणां प्रिये ! शत-शीर्षायुत-करा दुर्निरीक्ष्य नराकृतिः ।।

तथापि पूर्वोक्त 'हादि - विद्या' का भाग लेने से, देवत्व को प्राप्त होता है । **'देवो भूत्वा देवान् यजेत्'** इत्यादि प्रमाण से अपने को देव समझ कर, इस विद्या को भी कोई लोग ले लेते हैं । मतान्तर में इस विद्या को न लेकर, **सिद्धि - लक्ष्मी** से पहले **तुम्बरेशी** का त्र्यक्षरी या पञ्चाक्षरी लेने की भी प्रथा है । **काम - कला गुह्य - काली** का अष्टादशाक्षरी, **उन्मनी** का त्र्यक्षरी, **अन्नपूर्णा** का विंशाक्षरी, या **पूर्णेशी** का षडक्षरी, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी, या भुवनेश्वरी का त्र्यक्षरी, त्रि-वक्त्रा षड्-भुजा भुवनेश्वरी का महा - पञ्चाक्षरी, **महा - काली** का चतुरक्षरी, **महा - लक्ष्मी** का चतुरक्षरी, **महा - सरस्वती** का चतुरक्षरी, **चामुण्डा** का नवार्ण मन्त्र (सप्तशती - वर्णित), **कुब्जिका - समया** का द्वा - त्रिंशाक्षरी, **घोर-कुब्जिका** का द्वा - त्रिंशाक्षरी अथवा **कर्म - कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वीर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **वज्र-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **अघोर-कुब्जिका** का द्वा-त्रिंशाक्षरी (ये सब कादि-अङ्ग के हैं) । तदनन्तर **श्रीविद्या** पञ्च-दशाक्षरी, श्रीविद्या षोडशाक्षरी, त्रिकूटा-सहित त्रि-पदा **ब्रह्म-गायत्री**, श्रीविद्या महा-षोडशी, रश्मि-सहित षडन्वय शाम्भव-दीक्षा, 'आज्ञा-चक्र' में द्वा-त्रिंशद् रश्मि, स्वाधिष्ठान में एक-त्रिंशद् रश्मि, मणिपूर में षड्-विंशद्-रश्मि और मूलाधार में अष्टाविंशद्-रश्मि होती हैं ।पहले स्वाधिष्ठान, उसके बाद मणिपूर, तब मूलाधार-चक्र के क्रम से 'षडन्वय' में चिन्मन होता है । यह सब विषय **गुरु**-वक्त्र-गम्य है । इसमें शङ्कराचार्य जी का निम्नलिखित वचन प्रमाण है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं, स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रू-मध्ये सकलमपि भित्वा कुल-पथं, सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ।।

पूर्वोक्त रश्मि-सहित 'शाम्भव-दीक्षा' के अनन्तर, षडाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा', 'सम्यगाप्ता-क्रम' से ब्रह्म - गायत्री और चतुष्पदी गायत्री । लिखा भी है—**'गायत्री चेत् सम्यगाप्ता - क्रमेण'**, परन्तु यह 'सम्यगाप्ता - क्रम' **गुरु**-मुखारविन्द द्वारा ही अवगत हो सकता है । अलेखिनी विद्या होने से किसी ग्रन्थ में लिखित नहीं मिलती । **गुरु**-परम्परागत चली आती है । उसके बाद लघु-पाशुपत, मध्यम-पाशुपत, महा-पाशुपत, महा-पूर्णाभिषेक, महा-षोढान्यास, श्रीविद्या सप्त-दशी, साम्राज्य-मेधा-दीक्षा । इससे अधिक में गृहस्थों का अधिकार नहीं है । गृहस्थाश्रम के बाद महा-साम्राज्य-दीक्षा होती है ।

'बृहद् बड़वानल-तन्त्र में लघु-क्रम के विषय में निम्न-लिखित वचन मिलते हैं—

तत्त्वं पर-तरं दिव्यमशक्तानां कलौ युगे । षडाम्नाय - प्रबोधाय कथयामि लघु - क्रमम् ।।
यदि दैव-वशात् कश्चित् पूर्ण-क्रमं न लभ्यते । तदा महा - क्रमं कुर्यात् पर-ब्रह्म-पदाप्तये ।।
कलौ दैव-वशाद् देवि ! सुगुरुश्चेन्न लभ्यते । तदा सूक्ष्म - प्रकाराख्यं लघु-क्रममथाचरेत् ।।
लघु-क्रमे गुह्य-काली भुवना कुब्जिका तथा । दक्षिणा कालिका तारा श्रीविद्या परमेश्वरी ।।
चामुण्डाया नवार्णं च सर्व-दीक्षा-प्रदीपनम् । एकैक-मन्त्र-संयुक्तः कुर्यात् कौलाभिषेचनम् ।।
स्व-गुरु-क्रम-मार्गेण शाम्भवं च समाश्रयेत् ।।

१२—लघु-क्रम

इस लघु-क्रम में भरतोपासिता **दशानना गुह्य-काली** का षोडशाक्षरी, **सिद्धि-लक्ष्मी** का नवाक्षरी, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी, **कुब्जिका समया** का द्वा-त्रिंशाक्षरी, **महोग्र-तारा** का सार्ध-पञ्चाक्षरी, **बाला** का त्र्यक्षरी, **श्रीविद्या** पञ्च-दशाक्षरी और श्रीविद्या षोडशाक्षरी—इन सब विद्याओं को सान्दीपिनी समझ

कर **नवार्ण-मन्त्र** लिया जाता है। तब **गुरु**-परम्परा से शाम्भव होता है। मतान्तर से पूर्वोक्त लघु-क्रम में **दक्षिण-काली** का एकाक्षरी काली-बीज, **तारा** का एकाक्षरी शव-बीज, **भुवनेश्वरी** का एकाक्षरी माया-बीज और **कुब्जिका** का एकाक्षरी खेचरी - बीज लेकर **बाला** के षडक्षरों में षडाम्नाय समष्टि करके, 'कौलाभिषेक' लिया जाता है। विद्या और आम्नाय - क्रम से, आद्य- विद्या में 'शाक्ताभिषेक', द्वितीय - विद्या में 'कौलाभिषेक' और तृतीय-विद्या में 'पूर्णाभिषेक' लेते हैं।

नव-क्रम से प्रथम आम्नाय में 'शाक्ताभिषेक', द्वितीय ग्राम्नाय में 'कौलाभिषेक', तृतीय आम्नाय में 'पूर्णाभिषेक' होता है। महा-क्रम और पूर्ण-क्रम में प्रथम हादि-अङ्ग में 'शाक्ताभिषेक', कादि-अङ्ग में 'कौलाभिषेक' होता है। इन सब अङ्गों के पूर्ण होने के अनन्तर 'पूर्णाभिषेक' होता है।

सम्भव है 'क्रम - दीक्षा' के उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त भी ग्रन्य प्रकार हों, किन्तु उनसे हम परिचित नहीं हैं। यदि हों और कोई साधक-प्रवर उनसे परिचित हों, तो कृपया 'चण्डी' में लिखने की चेष्टा करें, जिससे पाठकों को लाभ हो। 'तन्त्र-चिन्तामणि' में भी 'क्रम-दीक्षा' के बारे में लिखा है, किन्तु इस लेख में प्रदर्शित क्रमों से उसमें विशेषता नहीं है। अतएव 'तन्त्र-चिन्तामणि' में प्रदर्शित 'क्रम - दीक्षा' का विषय इस लेख में नहीं दर्शाया गया।

'पादुका-दीक्षा' और क्रम-मन्त्र-ग्रहण के समय विघ्न

'पादुका-दीक्षा' के विषय में हमें इतना निवेदन करना है कि, प्रत्येक आम्नाय की पृथक्-पृथक् बीज-युक्त गुरु-पादुका होने से जिस-जिस आम्नाय का पूर्ण-क्रम होता है, उसी आम्याय की 'पादुका-दीक्षा' होती है। 'नाम-करण' तो 'पूर्णाभिषेक' के अनन्तर ही होता है।

ऊपर निर्दिष्ट क्रमों में सबसे बड़ा 'पूर्ण-क्रम' है। योग्य सद्-गुरु की प्राप्ति होने पर, गुरु और शिष्य दोनों यदि दत्त-चित्त होकर अभ्यास करना प्रारम्भ करें, तो ३-४ वर्षों में क्रम समाप्त कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक आम्नाय की मूल-विद्या मात्र का, एक लक्ष जप का 'पुरश्चरण' होता है। प्रति-वर्ष गुरु-पर्वादि पर्व मिलने के कारण क्रम-मन्त्र-ग्रहण के लिए अनुकूल ग्रवसर मिल सकता है।

'नारद-पञ्चरात्र' में 'क्रम - मन्त्र-ग्रहण' के समय विघ्नों के सम्बन्ध में बताया है। इन विघ्नों से साधक को घबराना नहीं चाहिए। योग्य गुरु की समक्षता में विघ्नों की आशङ्का ही नहीं रहती। सद्-गुरु साक्षात्-त्रिपुरा - स्वरूप हैं। जगदम्बिका के समक्ष विघ्नों का स्वप्न भी नहीं आ सकता, अपितु भाविनी फल-सिद्धि के सूचक शुभ-स्वप्न ही दिखाई देंगे। अतः सद्-गुरु-सान्निध्य की अवश्यमेव आवश्यकता है। गुरु-देव और जगदम्बा में कोई भेद नहीं है।

'दीक्षा', 'क्रम-दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक'—स्त्रियों के लिए भी ग्राह्य

'दीक्षा' जिस प्रकार पुरुषों के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है। अतएव 'क्रम-दीक्षा' का अधिकार स्त्रियों को भी, पुरुषों के समान है। 'क्रम-दीक्षा' के अनन्तर ही 'पूर्णाभिषेक' होता है। '**दम्पतीभ्यां मनुं दत्वा, कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम्**' इत्यादि आगम-वचन के अनुसार 'क्रम-दीक्षा' के बिना 'पूर्णाभिषेक' नहीं हो सकता। जब दम्पतियों को 'पूर्णाभिषेक' का अधिकार है, तो 'क्रम-दीक्षा' का अधिकार सुतरां सिद्ध है। यदि स्त्रियों के लिए 'दीक्षा', 'क्रम - दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक' का विधान न होता, तो—

स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता, मातुश्चाष्ट-गुणाधिका। स्वप्न-लब्धा च या विद्या, तत्र नास्ति विचारणा॥

इत्यादि **'गौतमीय तन्त्र'** के वचनानुसार उनको किस प्रकार दीक्षाऽधिकार दिया जाता ? **'स्वयमसिद्धा कथं परान् साधयिष्यति'**—इस नियम के अनुसार अदीक्षित किस प्रकार दूसरों को दीक्षित कर सकता है ? अतः निश्चित है कि 'दीक्षा', 'क्रम-दीक्षा' और 'पूर्णाभिषेक'—स्त्रियों के लिए भी पुरुषों के समान अवश्य ग्राह्य हैं।

कुछ लोगों का मत है कि 'स्वाहा' और 'प्रणव' (ॐ) युक्त मन्त्र स्त्री और शूद्रों के लिए निषिद्ध हैं, किन्तु यह निषेध 'पाशव-कल्प-विषयक' है, 'वीर-कल्प' और 'दिव्य-कल्प-विषयक' नहीं। इस विषय में 'तन्त्र-चिन्तामणि' में लिखा है, यथा—

प्रणवोच्चारणाद्धोमात्, शालग्राम-शिलार्चनात्। ब्राह्मणी-गमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां ब्रजेत्॥
शूद्रस्य प्रणवोच्चारं, पुराणेऽसम्मतं प्रिये ! तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं, तन्त्रोक्तं शूद्र-जातिना॥
महा-विद्या-प्रभावेण, शूद्रो वैश्यत्वमाप्नुयात्। प्रणवाद्या महेशानि ! गृह्णीयुः शूद्र-जातयः॥

'शूद्र' शब्द से यहाँ स्त्रियों का भी ग्रहण है। अतः 'प्रणव' का उच्चारण दोनों के लिए निषिद्ध है। 'पुराण-सम्मतं' जो लिखा है, वह 'पाशव-कल्प-विषयक' है। तथा 'तन्त्रोक्त' जो लिखा है, वह 'वीर' और 'दिव्य-कल्प-विषयक' है।

◆ ◆

'क्रम-दीक्षा'-सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान

ध्यान, मन्त्र और पूजा-सहित क्रम-दीक्षा-विषयक विवरण एवं भैरवी और कमला-क्रम भी, जैसा प्राप्त था, प्रकाशित हो चुका है। सम्भव है कि इनके क्रम के प्रकारान्तर भी हों और अभी तक अज्ञात हों, किन्तु जो क्रम बताया गया है, वह गौड़-सम्प्रदायान्तर्गत है। इस सम्प्रदाय के कई साधकों ने इस प्रकाशित क्रम को पढ़ा है और इसकी पुष्टि की है।

बगलामुखी महा-विद्या के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

उक्त विवरण में आया है कि 'बगलामुखी महा-विद्या होने पर भी किसी आम्नाय की नायिका नहीं है और वह विद्या केवल दक्षिणाम्नायान्तर्गत ही है।' यह ठीक ही है। महा-विद्या होने पर भी वह सिद्ध-विद्या है अथवा उप-विद्या है, यह नहीं लिखा।

विद्याएँ कई प्रकार की हैं, यह तो सबको मालूम ही है, जैसे महा-विद्या, सिद्ध-विद्या और उप-विद्या इत्यादि। इन विद्याओं में जिस विद्या का प्रकरण चलता है, 'विद्या'-पद लिखने से उसी 'विद्या' को समझना चाहिए। जैसे 'महा-विद्या'-विषयक बात में 'विद्या' लिखने से महा-विद्या का और 'सिद्ध-विद्या' के विषय में 'विद्या' शब्द से सिद्ध-विद्या का ही बोध होता है। यदि भगवान् श्रीकृष्ण की व्याख्या चल रही हो, तो 'भगवान्'-शब्द से उसमें पुनः श्रीकृष्ण का ही अर्थ होगा। यदि 'भगवान्' का अर्थ वहाँ पर शङ्कर भगवान् किया जाएगा, तो अर्थ में अनर्थ हो जाएगा। बार-बार भगवान् श्रीकृष्ण लिखने से लेख का विकार न बढ़ जाए, अतः 'भगवान्'-शब्द ही प्रयुक्त होता है।

आम्नाय के विषय में एक ही विद्या मन्त्र, यन्त्र और ध्यानादि के भेद से पृथक्-पृथक् आम्नाय की मानी जाती है। जैसे गुह्य-काली विद्या सकल आम्नायों में है, किन्तु यदि कोई यह प्रश्न करे कि 'गुह्य-काली किस आम्नाय की है ?' तो इसका उत्तर यह होगा कि वह "उत्तराम्नाय की है।" इसका

कारण यह है कि गुह्य-काली की सकल विद्याओं में भरतोपासिता दश-वक्त्रा गुह्य-काली मुख्य मानी गई है और वह उत्तराम्नायात्मिका है। महा-काल संहिता (गुह्य-काली-खण्ड), भाग १, पृष्ठ २ में लिखा है—

दश-वक्त्रा षोडशार्णा, चतुष्पञ्चशदोर्युता। सर्वासां गुह्य-कालीनां, सा वै मुख्य-तमा स्मृता।।

एवमेव तारा-विद्या अधराम्नाय-नायिका है। इसका सार्ध-पञ्चाक्षरी मन्त्र दक्षिणाम्नायात्मक होने के कारण उसकी उपासना अधराम्नाय आर्य-तारा के भेद से होती है। बौद्ध-मार्गानुयायी यही उपासना करते हैं और सम्वरौधि-मत से पूर्णाभिषेक भी लेते हैं।

इसी प्रकार छिन्नमस्ता में भी दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय और अधराम्नाय से उपासना की जाती है। 'पुरश्चर्यार्णव' में तो केवल दक्षिण और उत्तर को बताया है, परन्तु 'विश्वसार-तन्त्र' में वज्र-वैरोचनी नाम से अधराम्नाय में उसका वर्णन किया है। इस महा-विद्या के नाम, ध्यान और मन्त्र-भेद बहुत हैं, जैसे—प्रचण्ड-चण्डिका, वज्र-वैरोचनी और रेणुका, शबरी इत्यादि। रेणुका शबरी मतान्तर में सिद्ध-विद्या भी मानी गई है।

सिद्ध-विद्या और महा-विद्या में वागर्थ-वत् कोई भेद नहीं है। किसी क्रम में सिद्ध - विद्या महा-विद्या में समष्टि होकर उसका अङ्ग बन जाती है और किसी क्रम में महा-विद्या समष्टि होकर उसका अङ्ग बन जाती है।

अतएव बगला महा-विद्या का मुख्य मन्त्र, ध्यानादि दक्षिणाम्नायात्मक होने के कारण उसे दक्षिणाम्नायात्मिका बताया गया है। यह महा-विद्या ऊर्ध्वाम्नाय में भी है। उसमें स्थिरा-माया के स्थान पर भुवना-माया का प्रयोग है। इस महा-विद्या के भेद आम्नायान्तरों में भी हो सकते हैं।

ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र बगलामुखी के 'ब्रह्मास्त्र-कवच' में दिया ही है। श्रीविद्या के श्रीयन्त्र की आवरण-पूजा में इसी मन्त्र से पूजा होती है, न कि स्थिरा-माया-युक्त मन्त्र से।

बगलामुखी का दक्षिणाम्नायात्मक मन्त्र तो स्वयं ही दक्षिणाम्नायात्मक है। ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र में भी भुवना-माया का ऊर्ध्वाम्नायात्मक बीज दो स्थानों में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु दक्षिणाम्नायात्मकाक्षर लकार का प्रयोग काम-वीज में किया गया है। अब देखिए, ऊर्ध्वाम्नाय में दो माया-बीजों के भाग हैं—ह+र+ई+नाद+विन्दु-ये पाँच भाग द्विगुण करने से १० हुए। तथा दक्षिणाम्नायात्मक बीज (यहाँ दक्षिणाम्नायात्मक रूप से विद्यमान है) के भाग हैं—क+ल+ई+नाद+विन्दु–ये ५ और 'स्वाहा' भी यहाँ दक्षिणाम्नायात्मक रूप है, उसके स+व+आ+ह+आ–ये ५ भाग होने से १० ही हुए। यहाँ ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्र में भी दक्षिणाम्नाय का भाग ऊर्ध्वाम्नाय के समान होने से भी इस महा-विद्या के दक्षिणाम्नायान्तर्गत होने का प्रमाण मिलता है। 'पुरश्चर्यार्णव' में देखिए—

निशेशी दक्षिणा काली, बगला छिन्नमस्तका। भद्रा तारा च मातङ्गी, दक्षिणाम्नाय-देवताः।।

पुनः 'स्थिरा-माया' को बगला-बीज भी कहते हैं, 'स्थिरा-माया' दक्षिणाम्नायात्मक बीज है। 'शक्ति-सङ्गम' आदि किसी तन्त्र में भी बगलामुखी महा-विद्या दक्षिणाम्नायात्मिका नहीं है, अपितु अमुक-आम्नायात्मिका है, ऐसा नहीं बताया गया है। किन्तु 'पुरश्चर्यार्णव' की उक्ति और मन्त्रों के सङ्केत के मनन से तो यही विदित होता है कि इनके मन्त्रों में मुख्य मन्त्र दक्षिणाम्नायात्मक ही हैं, अतः उपर्युक्त लेख में इस महा-विद्या को दक्षिणाम्नायान्तर्गत बतलाया है।

'शुद्धि' के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

'शुद्धि' को 'महा-निर्वाण तन्त्र' में वायु - तत्त्वात्मक बताया है और 'बृहद् - बड़वाऽनल तन्त्र' ने उसे पार्थिव-तत्त्वात्मक घोषित किया है तथा ग्रन्थान्तर में उसे 'जल-तत्त्वात्मक' भी दर्शाया गया होगा। इससे साधकों को भ्रम हो सकता है, किन्तु ये तीनों बातें ठीक हैं। लिखा है कि—

"मांसं च त्रिविधं प्रोक्तं, जल-भू-चर-खेचरम्।"

अर्थात् 'जल-चर' कूर्मादि का मांस जल-तत्त्वात्मक है, 'भू-चर' जन्तुओं का मांस पार्थिव-तत्त्वात्मक है और 'खे-चर' पक्षी आदि का मांस वायु-तत्त्वात्मक है।

'भू-चर'—मांस का शोधक गायत्री मन्त्र है—**'पृथ्वी - तत्त्वाय विद्महे भूचराय धीमहि तन्नो मांसं प्रचोदयात्।'**

'खेचरामिष' शोधन-मन्त्र है—**'वायु-तत्त्वाय विद्महे खेचराय धीमहि तन्नो पक्षी प्रचोदयात्।'**

महा-यागादि में जब तक चरु स्थापित होते हैं, उस काल में शङ्ख-पात्र में 'जल - चर चरु' में मीन के साथ कूर्मामिष भी स्थापित होता है, किन्तु 'जल-चर - शुद्धि' का शोधन-मन्त्र पृथक् नहीं है। मीन के साथ रहने के कारण मत्स्य-शोधन के मन्त्र से ही काम लिया जाता है। अतः 'जल-चर-मांस' जल-तत्त्वात्मक सिद्ध हुआ।

'पूर्णाभिषेक' के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

पूर्णाभिषेक के विषय में 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है कि—**'पूर्णाभिषेको देवेशि ! दश-विद्या-विधौ स्मृतः।'** यहाँ भी 'महा-विद्या' न लिखकर केवल 'विद्या' लिखा, तथापि हम तो 'विद्या' का अर्थ 'महा-विद्या' ही समझते हैं। 'पुरश्चर्यार्णव' में यह भी लिखा है—

वैष्णवो गाणपत्यश्च, सौरश्चैव कुलेश्वरि ! अभिषेकं प्रकुर्वीत, शाक्तश्च कुल-भूषणः॥

इस उक्ति से पूर्वोक्त बात बिलकुल कट गई। पुनश्च कुब्जिका आदि सिद्ध-विद्याओं में भी पूर्णाभिषेक का प्रमाण और विधियाँ ग्रन्थालयों में प्रशस्त रूप से ही हैं। यद्यपि 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है कि— **'क्रम-दीक्षा-विधिर्यत्र, तत्र पूर्णाभिषेचनम्।'**

तथापि मतान्तर में क्रम के बिना भी पूर्णाभिषेक और नामकरण देखा जाता है, इस मत-वाले बिना प्रमाण के ऐसा नहीं कर सकते थे। इस विषय में भी 'पुरश्चर्यार्णव' का पूर्वोक्त वचन पर्याप्त है, परन्तु मत-मतान्तर से **'पूर्णाभिषेको देवेशि ! दश-विद्या-विधौ स्मृतः'**—यह प्रमाण तथा **'वैष्णवो गाणपत्यश्च, सौरश्चैव कुलेश्वरि ! अभिषेकं प्रकुर्वीत शाक्तश्च कुल-भूषणः'**—ये दोनों भी ठीक हैं।

किसी मत में केवल दश महा-विद्याओं में ही अभिषेक होता है, तो किसी के मत में सकल दर्शनों का समस्त देव-देवियों में अभिषेक होता है। केवल अपनी-अपनी गुरु-परम्परा-भेद की बात है।

वास्तव में अभिषेक का तात्पर्य यह है कि जिस विषय में पूर्णाभिषेक, कौलाभिषेक, शाक्ताभिषेक, राज्याभिषेक और मठाभिषेक आदि अभिषेकों में से कोई एक भी अभिषेक किसी साधक का हो गया हो, तो वह उस विषय का साङ्गोपाङ्ग सर्वाधिकारी हो जाएगा। वैसे ही क्रम - युक्त हो अथवा क्रम-रहित हो, पूर्णाभिषिक्त होने पर वह उस मन्त्र का सर्वाधिकारी हो जाएगा। क्रम किया हो, तो जिन-जिन मन्त्रों का क्रम उपलब्ध हुआ है, उन-उन मन्त्रों का और तदङ्ग-भूत उप-मन्त्रों का वह सर्वाधिकारी होगा। यदि एक ही मन्त्र में हुआ, तो केवल उस मन्त्र के अङ्ग-भूत उप-मन्त्रों का ही वह अधिकारी होगा।

उदाहरण के लिए देखिए—गोरक्षनाथ के मत में केवल 'बाला' के 'एकाक्षरी मन्त्र' से क्रम के बिना ही 'नाम-करण' और 'पूर्णाभिषेक' होता है और इसी विद्या के प्रभाव से वे लोग मठाधीश बन जाते हैं। ये लोग मन्त्र में पूजन 'म-पञ्चक' से ही करते हैं और कौलों के ही अनुसार 'चक्रार्चन' भी करते हैं। विधि-विधान भी प्रायः कौल लोगों से ही मिलता - जुलता है। अतएव "बिना क्रम के पूर्णाभिषेक हो ही नहीं सकता"—यह नहीं कहा जा सकता।

'ब्रह्म-गायत्री' की विपरीत मूर्ति बगलामुखी, 'कुण्डलिनी-रूपा' छिन्नमस्ता आम्नाय-नायिकाओं की अङ्ग बनकर क्रमात्मिका हुई—इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण

'क्रम-दीक्षा' के विषय में आम्नाय-नायिका होने से उपर्युक्त लेख में दृढ़ता के साथ कहा गया कि--"इस विद्या में क्रम है।" भ० बगला के विषय में विशेष अभिज्ञता न होने के कारण "क्रम है" अथवा "क्रम नहीं है"—यह बात दृढ़ता के साथ नहीं लिखी जा सकी।

वास्तव में बात यह है कि सर्वाधिकार 'निर्वाण दीक्षा' केवल षडाम्नाय - नायिकाओं की ही होती है। यह 'निर्वाण - दीक्षा', उस कुल्लुका की सेतु, महा - सेतु और निर्वाण नहीं है, जो केवल दश-महा-विद्याओं में ही होती है और सिद्ध-विद्यादि में नहीं होती। इसके बदले वहाँ और ही है, परन्तु यह 'सर्वाधिकार निर्वाण-दीक्षा', केवल षड् - विधा ही है। अन्य नहीं, यथा- १ दक्षिणाम्नाय में 'निर्वाण दक्षिण-काली', २ अधराम्नाय में 'निर्वाण तारिणी', ३ पूर्वाम्नाय में 'निर्वाण भुवनेश्वरी', ४ उत्तराम्नाय में 'निर्वाण गुह्य-काली', ५ पश्चिमाम्नाय में 'निर्वाण कुब्जिका' और ६ ऊर्ध्वाम्नाय में 'निर्वाण-सुन्दरी'। इन षड्-विद्याओं में अपने-अपने आम्नाय-भेद से अपने - अपने आम्नायात्मक सर्वाधिकार 'कूटाक्षर वीज' विद्यमान होते हैं।

जब तक सर्वाधिकार 'निर्वाण-दीक्षा' प्राप्त नहीं होती, तब तक साधक 'क्रम' में पूर्ण नहीं हो सकता। यद्यपि इसमें प्रमाण बहुत हैं, तथापि यहाँ उन ग्रन्थों का प्रमाण दिया जा रहा है, जो वीर लोगों के पास हैं। 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र', काली-खण्ड, षष्ठ पटल में लिखा है –

श्रीविद्योपासकानाञ्च पारम्पर्य-क्रमं शृणु। आदौ बाला विनिर्दिष्टा ततः पञ्च-दशी मता॥
तथा श्रीषोडशी-विद्या परा-विद्या तदुत्तरम्। ततश्चरण-दीक्षा स्याततो निर्वाण-दीक्षणम्॥
ततः षट्-शाम्भवाख्या च मेधा-दीक्षा तदुत्तरम्। अनुक्रमेण संयुक्ता मेधा-दीक्षाऽभिधा भवेत्॥

यह ऊर्ध्वाम्नाय के विषय में है। इसी प्रकार आम्नायान्तर-नायिकाओं के भी अन्य ग्रन्थान्तरों में प्रमाण पाए जाते हैं। 'पुरश्चर्यार्णव' और 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' के सर्वत्र विद्यमान होने से यहाँ केवल इन दो ग्रन्थों से ही प्रमाण दिए गए हैं। 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है—"**सुन्दरी तारिणी काली, क्रम-दीक्षा-ऽभिगामिनी।**"

पुनः इसी ग्रन्थ में लिखा है--"**सर्वाधिकारो देवेशि! एतद्दीक्षा-विधौ स्मृतः।**" अतएव आम्नाय-नायिका न होनेवाली महा-विद्याओं और सिद्ध-विद्याओं में क्रम होने का संशय होता है। यहाँ यह सम्भावना दिखाई देती है कि 'बगला' और 'छिन्ना' आम्नाय-नायिकाओं की अङ्ग बनकर क्रमात्मिका हुई होंगी। प्रमाण के लिए देखिए--'श्रीविद्या' ऊर्ध्वाम्नाय-नायिका और 'तारा' अधराम्नाय - नायिका हैं। 'शक्ति - सङ्गम - तन्त्र', काली - खण्ड, षष्ठ पटल में लिखा है--"**श्रीविद्याङ्गा तु बगला, ताराङ्गा छिन्न-मस्तका।**"

'बगला' के क्रम के अन्त में 'गायत्री' में समष्टि दर्शाई जाती है और 'श्रीविद्या' के पूर्ण-क्रम में भी 'गायत्री' का 'सम्यगाप्त - क्रम' होकर 'साम्राज्य - मेधा - दीक्षा' रूप 'निर्वाण - महा - त्रिपुर-सुन्दरी' में समष्टि होती है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि बगलामुखी' 'श्रीविद्याङ्ग' बनकर क्रमात्मिका बनी है।

अतएव उपर्युक्त विवरण में 'बगला' और 'छिन्नमस्ता' आदि महा-विद्याओं की अवहेलना नहीं हुई है। महा-विद्याओं की अवहेलना तो एक ओर रही, सामान्य विद्या की भी अवहेलना करना महा-पाप है—**"विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः।"**

'बगला महा-विद्या' तो 'ब्रह्म-गायत्री' की विपरीत मूर्ति है और 'महा - मृत्युञ्जय' की शक्ति है। जिस महा-विद्या द्वारा मनुष्यों का वर्णाश्रम-विभाग होता है और जो स्वयं जीव मात्र के स्वास्थ्य का मुख्य कारण है और जो मुक्ति प्रदान कर सकती है, ऐसी 'भुक्ति-मुक्ति - प्रदा' महा-विद्या की अवहेलना कैसे हो सकती है ? और 'छिन्न-मस्ता' महा-विद्या, जो कि समस्त प्राणियों में साक्षात् 'कुण्डलिनी - रूप' बनकर, अशेष जीवों को चैतन्य प्रदान कर रही है और अपने कण्ठ से निर्गत तीन रुधिर - धाराओं से--१ ईडा, २ पिङ्गला और सुषुम्णा नामक नाड़ियों का निर्माण कर, जीवों को उच्छ्वास - निःश्वास करने की सामर्थ्य दे रही है--ऐसी सकल जीव-लोक-चैतन्य-रूपिणी माता की अवहेलना - पथ का पथिक कौन बन सकता है ?

लघु पूर्णाभिषेक और महा पूर्णाभिषेक

'अभिषेक' के विषय में— 'पूर्णाभिषेक' दो प्रकार का है : एक 'लघु - पूर्णाभिषेक' और दूसरा 'महा-पूर्णाभिषेक।' इस विषय में शास्त्र-वचन प्रमाण-सहित 'क्रम-दीक्षा' लेख में दिए जा चुके हैं। 'लघु-पूर्णाभिषेक' को ही बहुत से ग्रन्थों में केवल "पूर्णाभिषेक" लिखा है। 'महा-पूर्णाभिषेक' तो 'सर्वाधिकार निर्वाण-दीक्षा' के बिना नहीं हो सकता। इसका पूरा विवरण 'वृहद्-वड़वानल-तन्त्र' के 'दीक्षा - प्रकरण' में दिया हुआ है, जिसे ऊपर प्रकाशित किया गया है। ग्रन्थान्तर में भी इस विषय में लिखा होगा।

शाक्तों में प्रायः 'लघु-पूर्णाभिषेक' की ही प्रथा प्रचलित है। 'महा - पूर्णाभिषेक' देने और लेने के लिए समर्थ-वान् पुरुष असम्भव नहीं, तो दुर्लभ अवश्यमेव हैं। 'महा-पूर्णाभिषेक' देनेवाले गुरु को 'सुधा-पूर्ण' कलश में ७ अथवा ९ दिन तक मनुष्य को जीवित रखने की सामर्थ्य होनी चाहिए और उसी जीवित मनुष्य के चैतन्य को इष्ट मानकर पूजन करने की शक्ति भी होनी चाहिए। 'महा - पूर्णाभिषेक' लेनेवाले शिष्य के लिए भी षडन्वय-शाम्भव के चिन्तन का अभ्यास और निर्वाण-दीक्षा के जप के प्रभाव से रन्ध्र खोलकर, वाष्प निकालने की क्षमता अत्यन्त आवश्यक है। जब गुरु और शिष्य--दोनों उक्त प्रकार के हों, तब 'महा-पूर्णाभिषेक' हो सकता है। इसका प्रमाण 'पुरश्चर्यार्णव' नामक ग्रन्थ से ही दिया जाता है--

सजीव-मीन- युक्तेन सुरया पूरितेन च। पञ्चामृतैस्तु सम्पूर्ण-शङ्खेन कलशेन वा ॥
अभिषेकं ततः कुर्यात् कुल-वृक्षोत्थ-पल्लवैः। अयं पूर्णाभिषेकोऽत्र कुल-मार्गे प्रकीर्तितः ॥

यह 'महा-पूर्णाभिषेक' केवल 'कुल-कल्प' से ही हो सकेगा, 'पाशव-कल्प' में नहीं। 'लघु-पूर्णाभिषेक' तो 'पाशव-कल्प' से भी हो सकता है। इस विषय में प्रमाण के लिए, 'पुरश्चर्यार्णव' के पूर्वोक्त वचन ही पर्याप्त हैं।

मन्त्र-ध्यान आदि के आम्नाय-सङ्केत

मन्त्र-ध्यानादि के यथार्थ सङ्केत गुरु-वक्त्र-गम्य हैं, लेख्य नहीं। तथापि यहाँ 'बगला - वीज' के विषय में एक छोटी-सी क्रिया का सङ्केत किया जाता है **सबसे पहले 'मन्त्र' किस 'देवता' का है, यह जान लेना चाहिए। तदनन्तर उसका अर्थ विचारना चाहिए। 'मन्त्र' का भावार्थ विदित होने पर, उस 'मन्त्र' के प्रत्येक 'वीज' और 'पद' का अर्थ विचार करके - सृष्ट्यात्मक अर्थवाले पद और वीजों को 'पूर्वाम्नायात्मक', स्थित्यात्मक अर्थवाले पद और वीजों को 'दक्षिणाम्नायात्मक', संहारात्मक अर्थवालों को 'पश्चिमाम्नायात्मक', अनाख्यात्मक (अन्तर्लयात्मक) और भाषात्मक (अनुग्रहात्मक) अर्थवालों को अनुकल्प से 'उत्तराम्नायात्मक' तथा 'ऊर्ध्वाम्नायात्मक' मानना होगा।**

अर्थात् जिस मन्त्र में भाषात्मक उत्तराम्नायात्मक अर्थ होगा, उसमें ऊर्ध्वाम्नाय अनाख्यात्मक होगा और जहाँ भाषात्मक ऊर्ध्वाम्नायात्मक अर्थ होगा, वहाँ उत्तराम्नायात्मक अनाख्या होगा। जिस मन्त्र में 'वायु-तत्त्व' अथवा 'जल-तत्त्व' अधिक होगा, उस मन्त्र में उत्तराम्नाय भाषात्मक और ऊर्ध्वाम्नाय अनाख्यात्मक होगा। पुनः जिस मन्त्र में तेजस्तत्त्व, आकाश-तत्त्व अथवा पार्थिव-तत्त्व अधिक होगा, उस मन्त्र में उत्तराम्नाय अनाख्यात्मक और ऊर्ध्वाम्नाय भाषात्मक होगा। इस प्रकार से **'मन्त्राक्षरों'** के **'आम्नाय-भाग'** जानने चाहिए।

प्रत्येक 'महा-मन्त्र' में कम-से-कम तीन आम्नायों के वीजों अथवा पदों का भाग होता है। 'मन्त्र' बहुत प्रकार के होते हैं— **नमोऽन्त, स्वाहान्त, फडन्त, विच्चेऽन्त, वषडन्त, वौषडन्त और वीजान्त** इत्यादि। सब मन्त्रों के अर्थ स्वाहान्त, नमोऽन्त और फडन्त मन्त्रों के अर्थ से मिलते-जुलते हैं। अतः उपर्युक्त तीन प्रकार के मन्त्रों का ही वर्णन किया जाता है। **'नमोऽन्त' मन्त्र पुं-रूप, 'स्वाहान्त' मन्त्र स्त्री-रूप और 'फडन्त' नपुंसक-रूप होते हैं।** यह केवल 'मन्त्र' के रूप का वर्णन है, 'देवता के रूप का नहीं। पुं-मन्त्र का तो देवता स्त्री - देवता भी हो सकता है। एवमेव स्त्री - रूप मन्त्र का पुं-रूप देवता और नपुंसक-रूप मन्त्रों के देवता भिन्न-रूपात्मक हो सकते हैं। कारण 'कुण्डलिनी' स्त्री-रूपा है और 'सहस्रार' का 'हंसग गुरु' पुं-रूप है, अतएव ऐसा हुआ।

विद्याएँ षडाम्नायों में बाँटी गई हैं। ये षडाम्नाय 'कहस'-रूप में अर्थात् **'कादि'** (कुण्डलिनी-क्रम की) विद्या, **'हादि'** (हंस-क्रम की) विद्या, **'सादि'** (संवरौधि-क्रम की) विद्या में विभक्त किए गए हैं। **इन** तीन विद्याओं में से 'कादि-विद्या' **'काली'**, 'हादि-विद्या' **'सुन्दरी'** और 'सादि-विद्या' **'तारा'** है। जिन-जिन मन्त्रों का पुं-रूप सिद्ध होगा, वे मन्त्र 'हादि'-विद्याऽन्तर्गत होंगे। जिन मन्त्रों का स्त्री-रूप सिद्ध होगा, वे 'कादि'-विद्याऽन्तर्गत और नपुंसक-रूप मन्त्र 'सादि'-विद्याऽन्तर्गत होंगे।

अब 'बगला-वीज' को देखिए, इसमें 'ह-कार' 'आकाश' का सूचक और 'ल-कार' पृथ्वी का अर्थ-सूचक है तथा 'ई-कार' ने शक्ति-रूप बनकर दोनों का ऐक्य किया। अतः इसका अर्थ 'स्वाहा' के समान हुआ। अतएव यह मन्त्र 'कादि-विद्या' के अन्तर्गत हो गया। 'स्वाहा' का अर्थ भी 'आकाश' और 'पृथ्वी' का एकीकरण करना है। 'ह' आदि में है तथा 'ल' अन्त में, इसीलिए 'ह' जाकर 'ल' में मिला। 'ल' 'पृथ्वी' का सूचक है, इससे यह स्पष्ट विदित हुआ कि यह 'स्थित्यात्मक वीज' है और स्थिति-आम्नाय 'दक्षिणाम्नाय' है। 'कुलार्णव-तन्त्र' के तृतीयोल्लासान्तर्गत ४१ वें श्लोक में लिखा है कि--

पूर्वाम्नायः सृष्टि-रूपः, स्थिति-रूपश्च दक्षिणः। संहारः पश्चिमो देवि ! उत्तरोऽनुग्रहो भवेत् ।।

अर्थात् दक्षिणाम्नाय स्थिति-रूप है । 'स्थिरा-माया' का अन्य नाम ही 'बगला-वीज' है । यह बात उपासक-प्रवरों से छिपी नहीं है, वरन् सर्व-विदित है । अतएव 'बगला' का मुख्य वीज यही (पूर्वोक्त) सिद्ध हुआ । 'पुरश्चर्यार्णव' में लिखा है—

निशेशी दक्षिणा काली, बगला छिन्नमस्तका । भद्रा तारा च मातङ्गी, दक्षिणाम्नाय-देवताः ।।

इन प्रमाणों से स्पष्ट विदित होता है कि 'बगलामुखी' दक्षिणाम्नायान्तर्गत महा-विद्याओं में से एक महा-विद्या हैं । दक्षिणाम्नाय-नायिका तो 'दक्षिणा-काली' ही हैं । एक आम्नाय की दो नायिका नहीं हो सकतीं । अतएव 'बगला-महा-विद्या' को उपर्युक्त लेख में दक्षिणाम्नायान्तर्गत महा - विद्या कहा गया । आम्नाय-नायिका के अतिरिक्त और विद्याओं की 'सर्वाधिकार निर्वाण-दीक्षा' नहीं हो सकती, यह ऊपर विस्तार से वताया गया है ।

'क्रम-दीक्षा' की पूर्व-भूमिका

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में सबसे प्रथम अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए । देव-भक्ति, श्रद्धा तथा मन की सरलता के बिना 'ईश्वरत्व' प्राप्त होना आकाश-कुसुम जैसा है । कुछ भी न करें, परन्तु सरल मन से 'भक्ति' तथा 'श्रद्धा' के साथ एक वार ईश्वर के नामोच्चारण से भी आदमी परम ज्ञानी बन सकता है । फिर अपने वर्णाश्रम तथा योग्यता के अनुसार सद्गुरु से जो 'उपदेश' मिलेगा, उसी में दृढ़ विश्वास, श्रद्धा तथा भक्ति रखकर सरल मन से उपासना करते-करते जब मानव बन पाएँगे, तव स्वयं ही 'गुरु-कृपा' प्राप्त कर—'क्रम' से ही शिव बन जाएँगे ।

'कुलार्णव तन्त्र' आदि में लिखा है कि—

क्रम-दीक्षायुतो देवि ! क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ।

अर्थात्—'क्रम-दीक्षावाला पुरुष क्रमशः शम्भु बन जाएगा ।'

उदाहरण के लिए देखिए, वाल्मीकि जी पहले व्याध थे । उस अवस्था में उनको 'राम नाम' तक भी बोलने का अधिकार न था । जब सप्तर्षियों के दर्शन से वाल्मीकि जी की चित्त-वृत्ति शुद्ध हो गई, तब उनको 'मरा' इस विपरीत 'राम-नाम' की 'दीक्षा' दी गई । तत्-पश्चात् क्रम-पूर्वक भक्ति, श्रद्धा तथा सरल चित्त से उपासना करते-करते, वे 'ब्रह्म-गायत्री' के मर्मज्ञ आदि-कवि महर्षि बन गए ।

अतः धीरज रखकर 'श्रद्धा' तथा 'भक्ति' के साथ उपासना करना आवश्यक है । ईश्वर की आराधना में ब्राह्मण तथा चाण्डाल, कोई भी हो—मनुष्य मात्र का समान हक है ।

किसी मनुष्य ने कुछ दुष्कर्म अथवा भूल की हो, तो वह भूल सुधार कर—स्वयं सहायक बनकर परोपकार करना चाहिए, जैसा कि सप्तर्षियों ने वाल्मीकि के साथ किया । साथ ही उस मनुष्य को भी अपनी भूल के प्रति पश्चात्ताप करते हुए दृढ़ विश्वास, श्रद्धा तथा भक्ति के साथ आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए, जैसा वाल्मीकि ने किया ।

सकल मनुष्य मात्र को 'क्रम' से 'महा-पूर्णाभिषेक' तथा 'महा-साम्राज्य-मेधा' तक प्राप्त करने का समान अधिकार है, परन्तु क्रम-पूर्वक ही ऊपर की श्रेणी में चढ़ना होगा । इस हेतु आदि में तो वर्ण-भेद का विचार रखकर, अपने-अपने अधिकार के अनुसार 'दीक्षा'-ग्रहण कर उपासना का आरम्भ करना चाहिए । फिर गुरु-कृपा से क्रमशः क्रम-दीक्षा, पूर्णाभिषेक, महा-पूर्णाभिषेक आदि प्राप्त करने चाहिए ।

'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए विशेष रियायती मूल्य पर महत्त्व-पूर्ण तन्त्र-ग्रन्थ

(१) महाकाल-संहिता

(मूल-मात्र : संस्कृत में)

'महाकाल-संहिता' तन्त्र का एक अति प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ रहा है। इस ग्रन्थ के निम्न चार खण्ड प्रकाशित हुए हैं—

काम-कला-काली-खण्ड,	मूल्य ९९)	काम-कला-काली-खण्ड,	रियायती मूल्य ८०)
गुह्य-काली-खण्ड—१	मूल्य ७०)	गुह्य-काली-खण्ड–१,	,, मूल्य ६०)
गुह्य-काली-खण्ड–२,	मूल्य ६०)	गुह्य-काली-खण्ड–२,	,, मूल्य ५०)
गुह्य-काली - खण्ड–३,	मूल्य ४८)	गुह्य-काली-खण्ड–३,	,, मूल्य ४०)

(२) हिन्दी मन्त्र-महार्णव : देवी खण्ड	१७५)	रियायती मूल्य १४०)
(३) सप्तशती-सर्वस्व, मूल	६०)	,, ५०)
(४) हिन्दी मन्त्र-महोदधि	१७५)	,, १४०)
(५) श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र, तीन भाग, मूल	४५०)	,, ३६०)
(६) बृहत् तन्त्रसार, मूल-मात्र	१००)	,, ८०)
(७) नारद पञ्चरात्र (हिन्दी अर्थ सहित)	१००)	,, ८०)
(८) सांख्यायन तन्त्र (हिन्दी सारांश सहित)	२५)	,, २०)
(९) प्राण-तोषिणी तन्त्र, दो भाग, मूल	७५)	,, ५०)
(१०) निरुत्तर तन्त्र	६)	,, ५)

सभी ग्रन्थ शक्ति-साधना हेतु महत्त्व-पूर्ण हैं। सभी सजिल्द हैं और उत्तम कागज पर छपे हैं।

भागवतधर्म का प्राचीन इतिहास

भागवत धर्म

(सनातन हिन्दू धर्म)

पर

विस्तृत रूप में प्रकाश डालनेवाली
शोध-पूर्ण उपयोगी पुस्तक

मूल बँगला-लेखक

ब्रह्मीभूत स्वामी विद्यारण्य जी

अनुवादक

श्री रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

'चण्डी पत्रिका के सदस्यों के लिए डाक-व्यय सहित मूल्य १०-०० रु०

(मुख-पृष्ठ पर प्रकाशित भगवान् कृष्ण की आरती का शेषांश)

इन्द्रिय-पर मन-पर त्वं, सर्व-परो परमो ।
जग-रमिणी-प्राणेश्वर, दीन-प्रियो वरमो ।।
गोपी-प्रिय गोपः प्रिय, बंसी-प्रिय मधुरा ।
स्वर-प्रिय विश्व-जनः प्रिय, राधाधर अधरा ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।५

कस्तूरी - तिलकार्चित, वन-मालाऽऽभरणं ।
पीताम्बर मुरली-धर, भक्त सुकर धरणं ।।
बिम्बाधर वामोदर, रक्त प्रभा मणि की ।
देहु दया-मय हितकर, भक्ति सुधा कणि की ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।६

देशोदय जन-मन में, बुद्धि हिताहित की ।
डूबत जग राखहु कर धर, मन धर जित की ।।
'मोती' मोह निवारहु, दारहु दुख नग से ।
पुण्य प्रथा सञ्चारहु, तारहु प्रभु जग से ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे ।
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे ।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।७

• • •

पर्व-दिन (श्री पीताम्बरा-पीठ दतिया द्वारा प्रकाशित 'तान्त्रिक पञ्चाङ्ग' के अनुसार)

१ सितम्बर ९०	भाद्रपद शुक्ल ११	श्रीभुवनेश्वरी जयन्ती
,,	,,	वामनावतार, वामन द्वादशी
२ सितम्बर ९०	भाद्रपद शुक्ल १	श्री प्रदोष व्रत
४ सितम्बर ९०	भाद्रपद शुक्ल १४	श्री अनन्त चतुर्दशी
८ सितम्बर ९०	आश्विन कृष्ण ४	श्री गणेश चतुर्थी
१६ सितम्बर ९०	आश्विन कृष्ण १२-१३	श्री प्रदोष व्रत, मास शिव-रात्रि
१७-१८ सितम्बर ९०	आश्विन कृष्ण १४	पितृ-विसर्जन
१९ सितम्बर ९०	आश्विन शुक्ल १	शारदीय नवरात्रारम्भ
२७ सितम्बर ९०	आश्विन शुक्ल ८	महाऽष्टमी
२९ सितम्बर ९०	आश्विन शुक्ल १०	विजया-दशमी

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, प्रयाग—२११००६